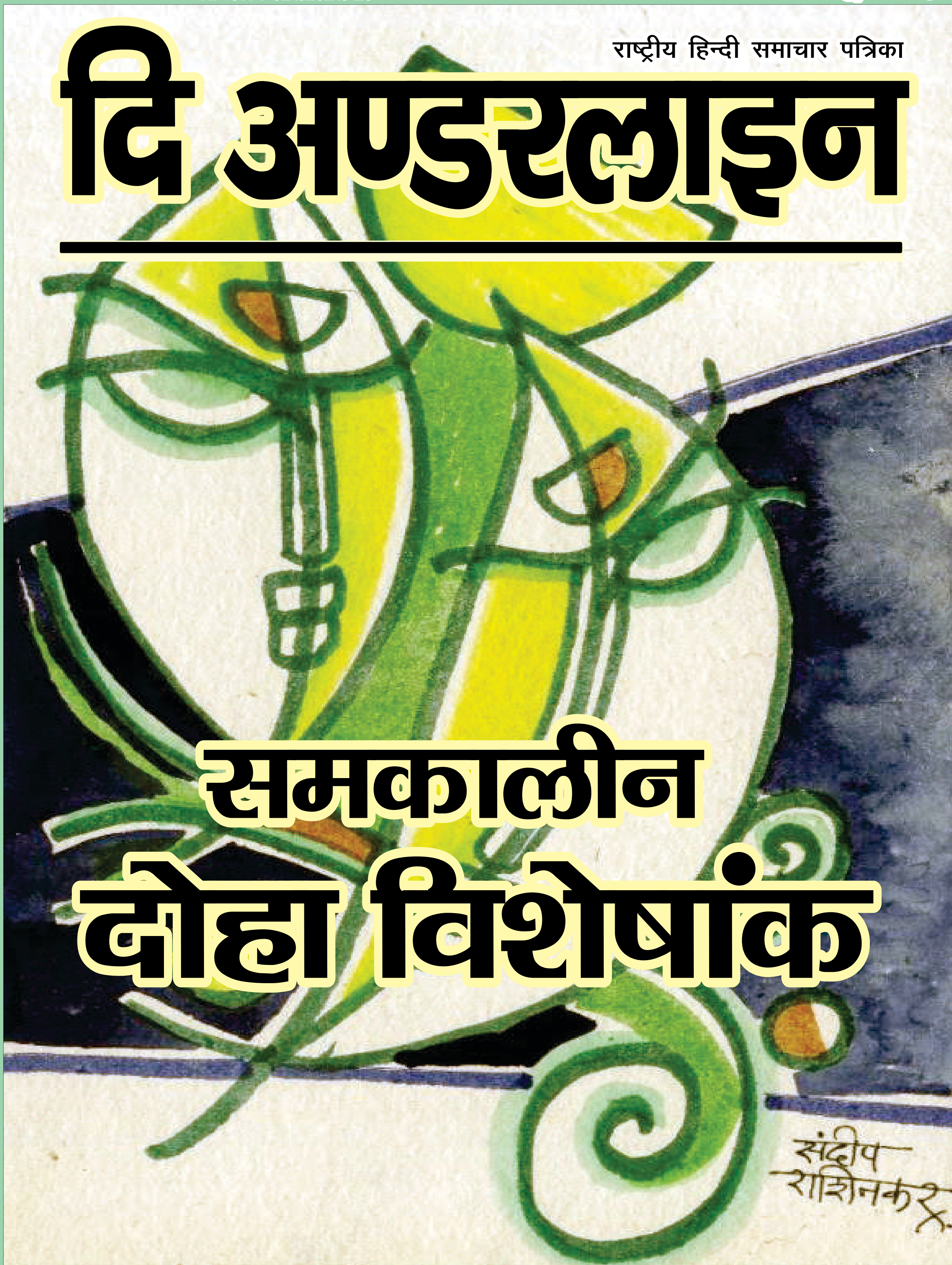
मार्च 2021 KP CITY-321/2021/-23 मूल्यः 15/–

राष्ट्रीय हिन्दी समाचार पत्रिका

दि अण्डरलाइन



समकालीन दोहा विशेषांक

REGISTERED WITH THE R.N.I.- UNDER NO. 72168/M99


जय जवान ! श्री गणेशाय नमः जय माँ काली जय किसान !
ग्राम सभा सुरार के सभी सम्मानित नागरिकों को
महाशिवरात्रि एवं होली
की हार्दिक शुभकामनाए
प्रधान पद प्रत्याशी
नन्द किशोर पाण्डेय (गुरु)
पूर्व क्षेत्र पंचायत सदस्य
मो. 8127379559
श्रीमती गीता पाण्डेय
पत्नी नन्द किशोर पाण्डेय
सौजन्य से : समस्त सम्मानित मतदातागण एवं वरिष्ठ नागरिक
महाशिवरात्रि व होली की हार्दिक शुभकामना
Krishna
DIE CUTTER
LAMINATION DIE CUTTING HALF CUTTING BOX PASTING PRINTING
vishnu Kumar Bajpai
106/253, Gandhi Nagar, (Jwala Devi Road) Kanpur- 208012
vishnubajapi237@gmail.com 91- 9336231026, 91-7905840244

मार्च 2021 वर्ष 21 अंक 12



संस्थापक स्व. डॉ. रामस्वरूप त्रिपाठी

डी.ए.वी.पी. नं.:129903

दि अण्डरलाइन

राष्ट्रीय हिन्दी समाचार पत्रिका

प्र.का.: 127/122 W-2 जूही कलां, कानपुर- 208027

सम्पर्क सूत्र : 9005880211

E-mail : theunderlineknp@gmail.com

www.theunderline.net

डॉ. प्रेम स्वरुप त्रिपाठी (स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक)
रिलॉयबल प्रिन्टर्स द्वारा मुद्रित एवं 127/122 डब्ल्यू–2 जूही कलां
कानपुर–208027 द्वारा प्रकाशित

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

कुछ अपने मन की....

हिन्दी साहित्य में दोहा छंद का 'प्रादुर्भाव' कब हुआ, इस सम्बन्ध में विद्वानों के अनेकानेक मत हैं, कुछ मानते हैं कि पद्मावत महाकाव्य में सबसे पहले जायसी ने दोहा और चौपाई लिखने का सफल प्रयास किया वहीं कुछ विद्वानों का मानना है कि दोहा छंद की लेखन पद्धति को सूफी कवियों से पूर्व सहजयान सिद्धों में से सरहपाद और कृष्णाचार्य ने विकसित किया था। दरअसल बहुत पहले प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में भी दोहा लिखा जाता था इस तथ्य की पुष्टि श्री गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा के इस कथन से हो जाती है, ''अपभ्रंश भाषा का प्रचार लाट (गुजरात), सुराष्ट्र, त्रयण (मारवाड़), दक्षिणी पंजाब, राजस्थान, अवंती और मन्दसौर आदि में था। वस्तुतः अपभ्रंश किसी एक देश की भाषा नहीं किन्तु; मागधी आदि भिन्न-भिन्न प्राकृत भाषाओं के अपभ्रंश या बिगड़े हुऐ रूप वाली मिश्रित भाषा का नाम है। उसका प्रायः भारत से दूर-दूर विद्वान प्रयोग करते थे। राजपूताना, मालवा, काठियावाड़ और कच्छ आदि के चारणों तथा भाटों के डिंगल भाषा के गीत इसी भाषा के पिछले विकृत रुप में हैं। पुरानी हिन्दी भी अधिकांश इसी से निकली है। इस भाषा का साहित्य बहुत विस्तृत मिलता है जो बहुधा कविता बद्ध है इसमें दोहा छंद प्रधान है।''

गाथा सत्य सती के मुक्तक 'गाथा छंद' में हैं। यही गाथा छंद अपभ्रंश में दूहा और हिन्दी में दोहा बन गया है। इस दोहा छंद पर आचार्य सेवक वात्स्यायन के विचार को उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है, ''दोहा शब्द का आज की भाषा में प्रयोग अच्छे अर्थ में नहीं किया जा रहा है, पर है यह बड़े अच्छे अर्थ वाला शब्द। कहीं से किसी का सत्-सत् निकाल लेना-निचोड़ लेना दूसरी चीज होती है- सार-सार ग्रहण करना ही दुह लेना है। इसका प्रयोग ज्ञान-मार्ग में भी है। सिद्धों -नाथपंथियों का प्राकृत अपभ्रंश का दूहा, हिन्दी का दोहा सही अर्थों में दोग्धा ही है। जिसे फुर्तीले दो पंक्तियों के एक छंद ने दुहकर अपने में समेट कर सहृदयों के लिए प्रस्तुत किया है, वही तो दोहा छंद है। इसे उल्टा कर देने पर सोरठा में भी वह बात नहीं रहती। अंग्रेजी का 'कप्लेट' तो इसके सामने दो कौड़ी का शब्द है। दोहा अनुष्टुप के समानान्तर बैठता है।'' साथ ही हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि पहले प्राकृत में काव्य लिखा गया और उसके बाद अपभ्रंश के काव्यों का युग आता है और इसी अपभ्रंश से वर्तमान हिन्दी का रूप विकसित हुआ। कुल मिलाकर दोहा लिखने की परम्परा प्राचीन समय की देन है जिसका अनुगमन कबीर, जायसी आदि कवियों ने किया है।

अन्त में, 'समकालीन दोहा विशेषांक' जिस रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत है उसका स्वरूप गढ़ने में आदरणीय जय चक्रवर्ती जी का सम्पूर्ण योगदान है। मुझ अकिंचन के अनुरोध को स्वीकार कर आपने मुझ पर जो कृपा की उसके लिए मैं अन्त्स की गहराईयों से उन्हें नमन करता हूँ। साथ ही मैं पुनः एक बार फिर अपने अग्रज डॉ. सुधांशु त्रिपाठी, श्री चक्रधर शुक्ल एवं श्री राजकुमार सचान के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूं। जिन्होंने सम्पादन से जुड़ी सभी परेशानियों से मुझे विलग रखा। यह अंक कैसा बन पड़ा इसकी प्रतिक्रिया जानने के लिए मैं हर बार की तरह पुनः उत्सुक हूं।

शेष शुभ.....

प्रेमस्वरूप त्रिपाठी

अतिथि सम्पादक की ओर से...

दोहे मेरे मीत हैं दोहे मेरा प्यार

पिछली सदी के अंतिम दशक से कविता में छंद की वापसी के स्वर काफी तेजी के साथ उभर कर सामने आए हैं। छंद के इस पुनरागमन का एक कारण दोहे का बड़ी मात्रा में सृजन भी माना जा सकता है। प्राचीन काव्य विधाओं में दोहा सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न छंद के रूप में प्रतिष्ठित रहा है,यह तथ्य भी सर्व विदित है। बारहवीं शताब्दी के कवि चंदवरदाई द्वारा पृथ्वीराज चौहान को संबोधित **''चार बांस चौबीस गज,अंगुल अष्ट प्रमान। ता ऊपर सुल्तान है,मत चूको चौहान''** और बिहारी द्वारा राजा जयसिंह को संबोधित **''नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल। अली कली ही सों बिंध्यों, आगे कौन हवाल''** जैसे दोहे अपनी तीव्र प्रभावान्विति के चलते इतिहास में अमर हो गए हैं। **''कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खइयो माँस। नैना दोऊ छोड़ियो, पिया मिलन की आस''** जैसा दोहा सृजन के सैकड़ों वर्षों बाद भी हिन्दी साहित्य में वियोग-श्रृंगार का सर्वोत्कृष्ट उद्धरण बना हुआ है। हमारी सम्पूर्ण विचार शक्ति को झकझोरते हुए कबीर के दोहे, तुलसी, रहीम, बिहारी के नीति श्रृंगार के दोहे सदियों पुराने होने के बावजूद भारतीय जन मानस में गहरे तक रचे-बसे और ज्यों के त्यों प्रासंगिक हैं। तेरह-ग्यारह, तेरह-ग्यारह के चार चरणों, कुल चौबीस-चौबीस अर्थात मात्र अड़तालीस मात्राओं के इस छोटे से छंद में इतनी बड़ी-बड़ी बात कह दी गई हैं कि एक-एक दोहे पर एक एक महाकाव्य रचा जा सकता है। संप्रेषणीयता और सहजता ऐसी कि खेत में हल चलाते हुए किसान से लेकर सड़क पर रिक्शा खींचते हुए मजदूर तक शायद ही कोई ऐसा हो, जिसे कबीर, रहीम, बिहारी, तुलसी के दस-पाँच दोहे कंठस्थ न हों और जिन्हें वह दिन में दो-चार बार गुनगुनाता न हो। एक सच्चे और अच्छे दोहे का यही वह गुण है जो इसे हर खास-ओ-आम के मध्य हमेशा से लोकप्रिय छन्द के रूप में प्रतिष्ठित किए हुए हैं।

दोहे की लोकप्रियता का एक कारण और भी है। सब जानते हैं कि लाख प्रयोगों और प्रयत्नों के बावजूद नई कविता अपनी बोझिल वैचारिकी या निखालिस गद्यात्मक सपाट बयानी से मुक्त नहीं हो सकी है, नवगीत भी बहुत हद तक अपने बिम्बधर्मी आग्रहों और छांदसिक छेड़-छाड़ के चलते सामान्य पाठकों और श्रोताओं के सिर से ऊपर गुजर जाने को अभिशप्त है। गजल चाहे हिन्दी की रही हो, या उर्दू की परंपरावादी, यह भी नागर श्रोताओं की परिधि से बाहर निकल पाने में झिझकती है। ऐसे में, दोहा ही एक मात्र ऐसा छन्द है, जो अपनी कायिक-लघुता और मारक क्षमता के साथ समाज के हर हिस्से को सदैव से अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है।

दोहे के इस सरल-सहज और निर्भीक चरित्र ने एक तरफ जहाँ इसे जन-स्वीकार्यता के शिखर तक पहुंचाया है, वहीं कतिपय अन्य कारणों से इसे आघात भी बहुत दिया है। आघात इन अर्थों में कि आज दोहे के फॉर्म में बड़ी मात्रा में शुद्ध सपाट-बयानी अथवा अखबारी सूचनाएँ या कबीर, रहीम, तुलसी आदि की कही हुई बातों को इधर-उधर शब्दों का हेर-फेर करके बड़ी मात्रा में दोहों का उत्पादन किया जा रहा है। तेरह-ग्यारह के फ्रेम में कुछ भी फिट करके उस पर दोहे का लेबिल चस्पा किया जा रहा है। यह प्रवृत्ति दोहे के लिए तो दुखद है ही, सच्चे दोहाकार और अच्छे पाठक के लिए भी बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है। हालाँकि दोहों की इस बाढ़ के दौर में भी बहुत सारे रचनाकार ऐसे भी हैं, जो बड़ी शिद्दत के साथ बहुत अच्छे दोहे लिख रहे हैं। ऐसे दोहे, जो हमारे समय के सवालों से सीधे मुठभेड़ करते हैं, जो हमारे जीवन-संघर्षों, सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियों, विसंगतियों, विद्रूपताओं, दुखों-अभावों और उनसे उपजी आम

आदमी की पीड़ा, आक्रोश, क्षोभ के सशक्त स्वर की उपस्थिति के साथ ही मुक्ति के मार्ग की संभावनाएं भी तलाशते हुए दिखाई देते हैं। ऐसे दोहे, दोहे को 'समकालीन' या 'आधुनिक दोहे' के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। दोहा अब नीति, भक्ति, शृंगार, उपदेश आदि की सीमाएं लांघते हुए हमारे जीवन और समाज के पूरी संपूर्णता के साथ एकाकार हो गया है। यह संपूर्णता न सिर्फ कहन के स्तर पर, अपितु भाषा के स्तर पर भी पूरी तरह दिखाई देती है। यहाँ शुद्ध खड़ी बोली के साथ उर्दू, अँग्रेजी आदि के वे शब्द, जो हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी में घुल-मिल चुके हैं अथवा जिन्हें हिन्दी ने 'एडॉप्ट' कर लिया है, आज के दोहे में साधिकार प्रयुक्त किए जा रहे हैं।

'दि अंडरलाइन' का यह विशेषांक 'दोहा' जैसे लघु छंद के माध्यम से हमारे समय के जरूरी और महत्वपूर्ण सवालों को पूरी जिम्मेदारी और निष्ठा के साथ उठाने और उनके वाजिब जवाब तलाशने का एक छोटा-सा प्रयास है। हमने कोशिश की है कि विशेषांक में भाषा, कथ्य और शिल्प के निकष पर दोहे की समकालीनता अपने तेवर और स्वर के साथ दिखाई और सुनाई पड़े। हमने जान बूझकर फूहड़ और नारेबाजी करने वाले दोहों से इस अंक को मुक्त रखा है। उपदेशात्मक दोहों से भी हमने हर संभव बचने का प्रयास किया है, क्योंकि मेरा मानना है कि हमारे पूर्वज कवि पहले ही अपने दोहों में नैतिकता के इतने ज्यादा उपदेश सँजोकर गए हैं कि यदि उन उपदेशों को ही जीवन में उतार लिया जाय तो आदमी सचमुच आदमी बन जाय। मुझे लगता है कि उन उपदेशों के आगे कुछ और कहना-लिखना बेमानी होगा। इसलिए हमने नीतिपरक अथवा उपदेशात्मक दोहों के स्थान पर इस अंक में उन दोहों को शामिल किया है जिनमें 'आम आदमी' को केंद्र में रखते हुए अलग-अलग संदर्भों में अपनी बात रखी गई है। इन दोहों में आपको हमारे समय की प्रतिध्वनि सुनाई देगी, मानवीय मूल्यों और सम्बन्धों को बचाए और बनाए रखने की ललक और पारिवारिक रिश्तों की खुशबू को सँजोकर रखने की जिद दिखाई देगी, साथ ही सियासी षडयंत्रों को परत-दर परत उधेड़ने और इनसे बचे रहने के लिए हमें आगाह करते स्वर भी सुनाई पड़ेंगे।

इस अंक के लिए हमारे निवेदन पर देश के विभिन्न हिस्सों से दोहाकार मित्रों के दो हजार से अधिक दोहे हमारे पास आए, जिनमें से पत्रिका की सीमाओं और संपादकीय-विवशताओं को दृष्टिगत रखते हुए एक सौ दो दोहाकारों के कुल नौ सौ तीस दोहों को स्थान दे पाना संभव हो सका है। अपने संपादकीय दायित्वों के निर्वहन की कड़ी में 'विरासत' शीर्षक के अंतर्गत हमने अपने पूर्वज कवियों और संतों के एक-एक दोहे को उनके नाम के साथ उद्धृत करके उन्हें आदराञ्जलि समर्पित की है। समूचा हिन्दी-समाज उन संत-कवियों का सदैव ऋणी रहेगा, जिन्होंने सदियों पहले दोहे की इस शानदार परंपरा को न सिर्फ स्थापित किया, अपितु जनमानस में इसे सर्वप्रिय बनाया। इसके अलावा 'हमारी पसंद' शीर्षक के अंतर्गत उन समकालीन कवियों का भी उनके एक-एक लोकप्रिय दोहे के साथ भावपूर्ण स्मरण किया गया है, जिन्होंने दोहे को उसके वर्तमान स्वरूप तक लाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

परंपरागत दोहे की तुलना में आज का दोहा किन अर्थों में भिन्न है, इसे जानने और समझने के उद्देश्य से तीन आलेखों को भी हमने इस अंक में स्थान दिया है, ताकि उन रचनाकारों को, जिन्होंने अभी-अभी दोहा लिखना शुरू किया है, अपनी सृजन दृष्टि तय करने मे मदद मिल सके।

*वर्ष-2020 कोविड जैसी महामारी के चलते पूरी दुनिया के लिए बेहद त्रासद और तनावपूर्ण रहा है। हमारा साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा । तमाम चिन्ताओं और अवरोधों के बीच इस कालखंड में कुछ सुखद सूचनाएँ भी आयीं। देश के विभिन्न भागों से समकालीन दोहों के दर्जनाधिक संग्रह और संकलन धरातल पर उतरे, जिनमें राजेन्द्र वर्मा का **'आत्म हुआ मकरंद'**, हरीलाल मिलन का **'दर्पण समय का'**, जय चक्रवर्ती का **'जिंदा हैं आँखें अभी'** (द्वितीय*

*संस्करण), रमेश गौतम का **'बादल फेंटे ताश'** , अशोक अंजुम का **' मैं बंदूकें बो रहा'** (दोहों में खंड काव्य), रघुबिन्द्र यादव का **'आए याद कबीर'** यादराम शर्मा का **' सन्नाटों का शोर'** ,राहुल शिवाय का **'एक कटोरी धूप',** प्रभु त्रिवेदी के तीन संग्रहों **'माँ की शीतल छाँव', 'पिता प्राण परिवार के'** तथा **'प्रिये तुम्हारा प्यार'** के ई-बुक संस्करण, गरिमा सक्सेना द्वारा संपादित एक सौ दोहाकारों का समवेत संकलन **'दोहे के सौ रंग',** रघुबिन्द्र यादव द्वारा संपादित पैंतीस दोहाकारों का संकलन **'दोहे मेरी पसंद के'** प्रमुख हैं।*

*मुझे मालूम है कि 'दि अंडरलाइन' ने अपनी दो दशकों से अधिक की सुदीर्घ यात्रा में कई शानदार पड़ाव तय किए हैं। हिन्दी साहित्य की अनेक प्रतिष्ठित हस्तियों और विधाओं पर पत्रिका के समय-समय पर प्रकाशित विशेषांक पाठकों के मध्य भरपूर समादृत हुए हैं। यह अकारण नहीं है कि हिन्दी की लघु पत्रिकाओं में 'दि अंडर लाइन' की पहुँच भारत और भारत के बाहर के देशों में भी है। इसलिए पत्रिका के इस **'समकालीन दोहा विशेषांक'** का सम्पादन किसी भी व्यक्ति के लिए गर्व का विषय हो सकता है। मेरे जैसे कविता के छोटे से विद्यार्थी के लिए भी ये गर्व के क्षण हैं। मैंने अपने ज्ञान की सम्पूर्ण सीमाओं और समूचे विवेक से इस अंक को आप तक पहुंचाने की कोशिश की है । मैं कहाँ तक सफल हो सका हूँ, इसका निर्णय आप पर छोड़ता हूँ।*

इस विशेषांक के सम्पादन की सम्पूर्ण और निर्वाध जिम्मेदारी मुझे सौंपने के लिए मैं पत्रिका के यशस्वी संपादक डॉ. प्रेमस्वरूप त्रिपाठी जी के प्रति विनम्र आभार ज्ञापित करता हूँ। सुपरिचित कवि और पत्रिका के अभिन्न सहयोगी अग्रज चक्रधर शुक्ल जी के लिए आभार शब्द छोटा है , क्योंकि जिस निष्ठा और समर्पण के साथ शुरू से अंत तक उन्होंने मुझे सहयोग किया, वह शब्दों से परे है। अत्यंत प्रतिभावान कवि और मेरे अनुजवत् डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर' को भी स्नेहिल धन्यवाद कि उन्होंने भी कदम-कदम पर मेरा साथ दिया, मेरी सहायता की। प्रकाशन हेतु दोहे एवं आलेख तय समय के भीतर मुझे उपलब्ध कराने के लिए अंक के रचनाकारों का भी हृदय से आभार। बिना उनके सहयोग के यह गुरुतर दायित्व पूरा कर पाना संभव ही नहीं था। पत्रिका में जो अच्छा है, वह सारा का सारा इसमें उपस्थित रचनाकारों का है और जो कुछ खराब है , उसका दायित्व मेरा और सिर्फ मेरा है।

अंत में दोहों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को दोहराते हुए इस दोहे के साथ, अंक पर आप सबकी बेबाक टिप्पणियों की प्रतीक्षा रहेगी:

हर सुख से सम्पन्न है,दोहों का संसार ।
दोहे मेरे मीत हैं, दोहे मेरा प्यार ।।

-जय चक्रवर्ती



आधुनिक दोहाः कुछ अभिमत

''मेरा मानना है कि कविता को जनप्रिय लोकप्रिय बनाने में काव्य की जिस विधा ने सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, वह है दोहा। आदिकाल से अब तक 'लोक' ने सदैव इसे हाथों-हाथ लिया है । यह वो छंद है जिसने जनमानस पर गहरा प्रभाव डाला है और सदैव उद्धरणशील रहा है। इस प्राचीनतम काव्य विधा का कोई बाल भी बाँका कर पाये, ऐसा दिखाई नहीं देता।

('आधुनिक लोकप्रिय दोहाकार' की भूमिका में गोपालदास नीरज)

''24-24 मात्राओं की दो पंक्तियों की दोहे की रचना बड़ी कठिन है । इस पर 'गागर में सागर' की कहावत लागू होती है । सही किस्म के दोहे के लिए भाषा कसी हुई, प्रांजलता, शब्दों की मितव्ययिता, कथ्य की संक्षिप्तता एवं सांकेतिकता, वर्णन की चमत्कारपूर्ण अलंकारिता, अनुभूति की मार्मिकता एवं सूत्र की सूक्तिपरक उद्धरणीयता आवश्यक है।"

('दोहे समकालीन' में पद्मश्री चिरंजीत)

''मैं यह दोहराना चाहूँगा कि दोहे को उपदेशकों,कोरे नैतिक कीर्तनियों और अखबारनबीसी के टोने टोटकों से बचाइए। दोहा-लेखन ऊपर-ऊपर से जितना सरल और सपाट है, कलापूर्ण दोहा कहना उतना ही दुस्साध्य है। विषय-निबद्ध दोहे लिखने की कारोबारी को मैं खूँटा गाड़कर उससे गाय बाँधने जैसा प्रयास ही कहना चाहूँगा।"

('अफवाहों के पंख' की भूमिका मे देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र')

दोहा जैसा काव्यरूप सनातन होने की हद तक भारतीय है । इसके जैसी लोक-संस्कृति हिन्दी कविता में किसी अन्य विधा को नहीं मिली। यह अपनी शास्त्रीयता में भी बेजोड़ है। इसकी आवाजाही विशिष्ट और सामान्य दोनों वर्गों में है। लौकिक संस्कृत के बाद पालि, प्राकृत,अपभ्रंश आदि उत्तर-भारतीय भाषाओं को समृद्ध करता हुआ 'नावक' का यह 'तीर' पाठक और श्रोता को हर तरह 'घायल' या प्रभावित करता रहा है। स्पष्टतया इसका यह घायल करना किसी शारीरिकता को प्रतीकित नहीं करता, बल्कि हमारे संवेदन और आत्म तक जाता है। अपनी सुदीर्घ रचना-यात्रा में दोहा छंद ने सदियों से जिन भी पड़ावों को पार किया, नीतिपरक उपदेशात्मकता उसका प्राण रही है । लेकिन आज का दोहा किसी भी तरह की उपदेशपरकता से प्राणवान नहीं हो सकता। वह हमारे इर्द-गिर्द फैले और खुले यथार्थ का प्रवक्ता है, और समकालीन हिन्दी कविता की प्रगतिशील परंपरा को ही लगातार पुष्ट कर रहा है।

('समकालीन दोहाकोश' में रामकुमार कृषक)

''आज के दोहे अपने परिवेश के अनुभवों को समेटे हुए सहज और गहरे अर्थबोध से सम्पन्न हैं । यहाँ बनावट नहीं है । इसी कारण आज समाज के गरीब, मजदूर, किसान, राजनीति, शासन-तंत्र और व्यवस्थागत विडंबनाओं, आतंकवाद, धार्मिक-पाखंड, अंधविश्वास आदि पर सबसे अधिक दोहे कहे जा रहे है। आज के दोहाकर की चिंता विकास के नाम से चल रहे इस विनाश से धरती के सौंदर्य को बचाने की भी है। दोहे की प्राचीन परंपरा को साथ रखते हुए आज का दोहा मानवीय मूल्यों के स्खलन की चिंताएँ अपनी सम्पूर्ण प्रशनाकुलता के साथ व्यक्त कर रहा है।"

('समकालीन दोहाकोश' की भूमिका में हरेराम समीप)

''आज का समय असंतोष का समय है, चाहे वह वैयक्तिक स्तर पर हो या सामाजिक राजनैतिक स्तर पर। पिछले कुछ दशकों में मूल्यों का क्षरण जिस तेजी से हुआ है, चीजें जिस तेजी से परिवर्तित हुई हैं, वे संवेदनशील प्राणियों को कचोटतीं हैं। और शायद यही कारण है कि आज दोहा असंतोष का, विद्रोह का दोहा बन गया है। अर्थात आधुनिक दोहे का मूल स्वर असंतोष नजर आता है।"

('समकालीन दोहाकोश' में अशोक अंजुम)

आधुनिक दोहे में कितनी आधुनिकता

दोहे की समृद्ध परम्परा पर प्रायः बहुत बातें होती रही हैं। यह लघुरूपा, कहन में अपनी विशिष्टता और आकार की संक्षिप्तता के कारण विशेष जनप्रिय छन्द रहा है। भक्तिकाल और रीति काल में भक्ति, नीति और शृंगार का ऐसा कौन-सा बिन्दु है जिसे इस छन्द ने स्पर्श न किया हो। लेकिन अब समय बदला है, परिस्थितियाँ बदली हैं और एक अर्से तक सुप्तावस्था में रहा दोहा बीसवीं सदी के अंतिम दशक से कथ्य के स्तर पर नया चोला, नया आवरण धारण करके फिर से जन-जन पर छा गया है। अगर कथ्य में शक्ति हो तो 'दोहा' वह खूबसूरत छन्द है जो तेजी से, जुबान पर चढ़ता है। जहाँ तक शिल्प की बात है तो इसकी भाषा, कथ्य, मुहावरे में जरूर परिवर्तन हुआ है... किन्तु **13-11** के क्रम का निर्वाह इस छन्द की विशिष्ट पहचान है, जिसे साधना ही पड़ेगा।

आज आधुनिक दोहाकारों की एक बड़ी ही सम्पन्न सूची हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रही है। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में तमाम नये-नये दोहाकार हमारे सामने आये हैं। वैसे इनमें बड़ी संख्या उनकी भी है जो **13-11** के क्रम को साधना, और रगण-तगण का गणित लगाने को ही दोहा-सृजन मानते हैं। कई तथाकथित दोहाकार तो कई-कई सतसइयाँ रच चुके हैं, लेकिन 'परिमाण' से अधिक महत्व 'परिणाम' का है। आज के समय में अगर दोहे की रचना करनी है तो आज के समय की नब्ज को पकड़ना आना ही चाहिए। दोहा-सृजन में पहचान बनाने के लिए आधुनिकता-बोध की महती आवश्यकता है। कथ्य के स्तर पर हमारे पूर्वज दोहाकारों, संत कवियों ने इतने उपदेश इस दोहे के माध्यम से दिए हैं कि नैतिकता के स्तर पर तो अब कुछ खास बचता नहीं है तब नये तरीके से नई बात कहना बहुत जरूरी है।

आधुनिक दोहे में दोहाकारों को जाय-लाय-खाय, लेय-देय, होय-तोय-खोय, करत-कहत-सुनत जैसे तुकांत क्रिया पदों से बचना बहुत आवश्यक है, लेकिन देखा ये जाता है कि अधिकांश दोहाकार इस प्रकार की क्रियाओं का दोहों में प्रयोग कर रहे हैं। करत- कहत- सुनत को तो करे, कहे, सुने के रूप में प्रयोग करने पर कोई कठिनाई होनी ही नहीं चाहिए, लेकिन ये प्रयोग भी खूब दृष्टिगत हो जाते हैं।

आज का समय असंतोष का समय हैय चाहे वो वैयक्तिक स्तर पर हो, या सामाजिक-राजनैतिक स्तर पर। पिछले **2-3** दशकों में मूल्यों का जिस तेजी से क्षरण हुआ है, चीजें जिस तेजी से परिवर्तित हुई हैं, वह संवेदनशील प्राणियों को कचोटती हैं। और शायद यही कारण है कि आज का दोहा असंतोष का, विद्रोह का दोहा बन गया है, अर्थात आधुनिक दोहे का मूल स्वर असंतोष नजर आता है। राजनीति, समाज, परिवार, दोस्ती, रिश्ते जब सब अर्थ प्रधान हो गए हों तो किसकी प्रशंसा की जाए, किसकी बलइयाँ ली जाँय। बहरहाल आइये, आज के दोहे में वर्तमान समय को खंगालते हैं। चलिए, बात शुरू करते हैं घर-परिवार से और देखते हैं **डॉ.अजय जनमेजय** का यह दोहा -

कुछ तो किस्से कम हुए, कुछ सुनने का चाव
नानी बैठी सोचती, बच्चों का बदलाव

अब ये कहना न होगा कि बच्चों का ये बदलाव बहुत कुछ मनोरंजन के आधुनिक उपकरणों की देन है, आज बच्चों को वीडियो गेम, कार्टून चैनल्स आदि अधिक प्रभाविक कर रहे हैं तब किसे फुरसत है कि नानी की कहानी सुने। तब नानी भी मुक्त हुईं और नानी को भी इंतजार रहने लगा है सास-बहू के किस्सों वाले टी.वी. धारावाहिकों का।ये तो उन बच्चों की बात रही, जिन्हें तमाम सुख-सुविधाएं विरासत में मिली हैं। कुछ बच्चों को समय ने कुछ ऐसा भी बना दिया है कि **डॉ.रामसनेही लाल 'यायावर'** उनकी हालत देखकर कह उठते हैं-

हाय विधाता! बालकों को कैसी सौगात
कुछ के चाकू पेट में, कुछ के चाकू हाथ

और ये बालक जब कुछ और बड़े होकर कॉलिज पहुँचते हैं तो इनकी कारगुजारियाँ देखकर **पद्मश्री चिरंजीत जी** पूरी आदमजात को लपेटे में ले लेते हैं-

अब माना यह आदमी, बंदर की औलाद
पुरखा-जंगल छोड़कर, कॉलिज में आबाद

पहचान का संकट हर तरफ है। इसी के बीच आज का गाँव भी अपनी पहचान खो रहा है। लेकिन फिर भी गाँवों में कुछ मिठास अभी बाकी है, जो **डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल** जैसे रचनाकारों को अपनी ओर आकर्षित करती है-

नस-नस में भरने लगी, कड़वी-कड़वी बात
शहर नहीं भाता मुझे, लौट चलो देहात

लेकिन वरिष्ठ कवि **श्री सूर्यकुमार पाण्डेय** के अनुसार अब गाँव भी कड़वाहट से कहाँ अछूते हैं -

मेड़ -मेड़ पर मुकदमे, पगडण्डी पर दाँव
आजादी कुछ इस तरह आयी अपने गाँव

सशक्त दोहाकार **श्री रघुविन्द्र यादव** के अनुसार भी गाँव अब पहले जैसे नहीं रहे -

'माधव' तेरे गाँव की, हालत हुई खराब
दूध-दही मिलता नहीं, मिलती खूब शराब

लेकिन चर्चित कवि **डॉ.शिवओम अम्बर** गाँव को एक दूसरे ही एंगल से देखते हैं-

घुरहू की बेटी हुई, जब से यहाँ जवान
मेहरबान हैं साहुजी, मैत्रीपूर्ण प्रधान

पद्मभूषण नीरज आजादी के बाद की तस्वीर कुछ यूँ खींचते हैं -

आजादी के बाद कुछ ऐसा हुआ विकास
हरियाली को दे दिया ऊसर ने वनवास

चर्चित कलमकार **डॉ घमण्डीलाल अग्रवाल** के अनुसार आजादी के बाद का परिदृश्य कुछ ऐसा है –

आजादी ने ढक लिया यों सारा परिवेश
लगी मानने कोकिला, कौवों का आदेश

समाज अनेकशः समस्याओं के मूल में कवयित्री **डॉ.अंजना सिंह सेंगर** जो पाती हैं, उसे एक दोहे में कुछ यूँ अभिव्यक्त करती हैं –

दूजे से उम्मीद की, रहती है दरकार
भूले सब कर्त्तव्य वे, गिना रहे अधिकार

जनसंख्या लगातार बढ़ रही है और इसी के साथ संसाधनों पर दबाव भी बढ़ता जा रहा है। खाद्य संसाधनों पर भी दबाव स्वाभाविक ही है। लेकिन दूसरी ओर खेत लगातार कंकरीट के जंगलों में तब्दील हो रहे हैं। तब चर्चित कवि **डॉ. कुँअर बेचैन** की ये चिन्ता स्वाभाविक ही है–

सिसक-सिसक गेहूँ कहे, फफक-फफक के धान
खेतों में फसलें नहीं, उगने लगे मकान

चलिए, गाँव से फिर शहर की ओर चलते हैं, जहाँ दफ्तर हैं, और इन दफ्तरों में फाइलों के ढेर हैं, जिनका वजन बताने के लिए आधुनिक दोहे के बेहद चर्चित हस्ताक्षर और इसे एक नई दिशा देने वाले वरिष्ठ कवि **श्री देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'** को पौराणिक मिथकों का प्रयोग करना पड़ता है–

फाइल शिवजी का धनुष, अंगद की है टाँग
नहीं उठाने से उठे, धन से भरे छलाँग

आजादी के बाद देश को तरह-तरह से लूटने वालों की चाँदी हो गयी, रोके कौन ? जिन पर रोकने की संवैधानिक जिम्मेदारी थी, वे तो स्वयं इन लुटेरों के सरगना बनकर हमारे सामने प्रकट होने लगे ! और जिन्होंने देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व झोंक दिया, उनके परिवार दाने-दाने को मोहताज हो गए! वरिष्ठ कवि, दोहाकार **श्री कैलाश गौतम** के शब्दों में –

सुविधाभोगी शान से, काट रहे हैं माल
बलिदानी परिवार में, मुश्किल रोटी-दाल

एक अन्य दोहे में देखें –

सुनता हूँ जिस दिन मिला, सरकारी अनुदान
नयी कार में बैठकर, घर लौटे परधान

सरकारी अनुदान का एक व्यापक चित्र वरिष्ठ दोहाकार **श्री राजेंद्र वर्मा** कुछ इस प्रकार खींचते हैं –

वर्ल्ड बैंक से कर्ज ले, देश हुआ धनवान
अजगर भी पाने लगे, सरकारी अनुदान

भ्रष्टाचार हमारे देश को जिस प्रकार गेंहू में लगे घुन की तरह खोखला करता रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है! किन्तु जब न्याय-व्यवस्था भी इससे कमजोर हुई जाती हो तो स्थितियाँ और अधिक भयावह हो जाती हैं, **श्री राजपाल सिंह गुलिया** के शब्दों में –

जब-जब रिश्वत को मिला, अपना सही मुकाम
झटपट खारिज हो गए, जितने थे इल्जाम

युवा कवि **उत्कर्ष अग्निहोत्री** इस विषय में कहते हैं –

नव्य -न्याय की मान्यता का बढ़िया है ढंग
मिला हुआ कानून खुद, हर दोषी के संग

शहरी मित्रता भी अपना अलग ही रंग रखती है, यहाँ के मित्रों के साथ आधुनिक दोहे के प्रतिष्ठित हस्ताक्षर **श्री जय चक्रवर्ती** का अनुभव बहुत ही कटु रहा है–

मित्रों से मुझको मिला, बस इतना ही प्यार
पढ़कर के फेंका गया, ज्यों दैनिक अखबार

इन मित्रों की पहचान समर्थ दोहाकार **डॉ.गोपाल बाबू शर्मा** कुछ और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

कंधे पर पहुँचें कहाँ, अब मित्रों के हाथ
उनका परिचय जेब से, या गर्दन के साथ

आज सोशल मीडिया ने हमारी जिंदगी को पूरी तरह अपनी गिरफ्त लिया है! 'कॉपी-पेस्ट' का जो खेल इस माध्यम से चल रहा है, उसे दोहाकार **श्री ओम वर्मा** कुछ यूँ पेश करते हैं –

उफ ये सोशल-मीडिया, कैसा है संत्रास
नित मेरा संदेश ही, आता मेरे पास

मजहबी दंगे, कर्फ्यू आदि भी आज के समय और शहरों की त्रासदी हैं; जो मजहब कभी जोड़ने का काम करते थे, इंसान को सही मार्ग दिखाते थे आज इन्हीं के नाम पर सर्वाधिक खून-ख़राबा दिखाई देता है। **कुमार रवीन्द्र** कहते हैं–

आँगन में पत्थर बिछे, घर है लहूलुहान
सारी बस्ती हो गई, मजहब की दूकान

इस मजहबी उत्पात के पीछे जो चरित्र काम करते हैं , रचनाकार उन्हें बहुत अच्छी तरह पहचानता है ! सशक्त युवा कवि **राहुल शिवाय** का ये दोहा देखें –

आग लगा देती तुरत, बिन माचिस बिन तेल
राजनीति जब खेलती, जुमलों वाले खेल

लोकप्रिय शायर और फिल्मी गीतकार **श्री इब्राहीम 'अश्क'** के अनुसार दंगों की विभीषिका का परिणाम –

कल क्या थी, क्या हो गई, बस्ती की तस्वीर
दंगे भी लिखने लगे, मुल्कों की तकदीर

समर्थ, चर्चित दोहाकार **सूर्यभानु गुप्त** इसे और अधिक व्यापक फलक पर रखते हैं–

श्रद्धा से चंदन जले, दुख से जले शरीर
मजहब से बस्ती जले, नफरत से कश्मीर

आधुनिक दोहे के एक और समर्थ हस्ताक्षर **श्री दिनेश शुक्ल** अपने एक दोहे में कर्फ्यू की भयावह शाम का दृश्य प्रस्तुत करते हुए नये बिम्ब गढ़ते हैं–

सन्नाटा बुनने लगी, ये कर्फ्यू की शाम
मरे चाम पर लिख रहा, लोहा अपना नाम

इस सबके बीच वरिष्ठ दोहाकार **लक्ष्मण** ये चाहते हैं कि –

छोड़ो भी कुरआन या गीता के आघात
होने दो इक बार बस दिल से दिल की बात

इतनी सारी विसंगतियों, विडम्बनाओं के साथ जी रहे ये शहर फिर भी बेतहासा फैलते जा रहे हैं और इनके फैलाव के कारण जंगल-बाग बगीचों की बलि चढ़ रही है, जिसके कारण न सिर्फ धरती से बल्कि जीवन से भी निंरतर हरियाली लुप्त हो रही है; **डॉ. अनंतराम मिश्र 'अनंत'** इस संकट से बेहद आहत हैं-

तुमने तो इस बाग के, काटे सभी रसाल
पेंग भरेगा अब कहाँ, सावन झूला डाल

नगर हैं कि फैलते ही जा रहे हैं, जमीनों के दाम आसमान छू रहे हैं, बेतहासा भीड़ बढ़ती जा रही है और इसका सीधा असर संसाधनों के साथ-साथ पर्यावरण पर भी पड़ रहा है, जीव- जंतुओं-पक्षियों की प्रजातियाँ लुप्त हो रही हैं। **अंसार कंबरी** के शब्दों में-

पंछी चिंतित हो रहे, कहाँ बनाएँ नीड़
जंगल में भी आ गई, नगरों वाली भीड़

इसी के साथ शहर संवेदन शून्य भी हो गए हैं; बड़े से बड़ा हादसा भी अब हमें द्रवित नहीं करता; सिर्फ तमाशा देखा, चच्च-चच्च किया और चलते बने। क्या कुछ नहीं हो रहा इन शहरों में। शहर का एक दृश्य व्यंग्य कवि, दोहाकार **श्री माणिक वर्मा** प्रस्तुत करते हुए आये दिन होने वाली घटनाओं के पीछे छिपी त्रासदी को बयां करते हैं-

इसी रूप पर आश्रित, थे रोटी के ख़्वाब
तुझे फेंककर क्या मिला, चेहरे पर तेजाब

वरिष्ठ शायर **पद्मश्री बेकल उत्साही** ने बेटियों की विवशता को बड़े मार्मिक तरीके से अपने एक दोहे में उकेरा है –

मधुमक्खी ने द्वार पर छत्ता लिया लगाय
अब लड़की स्कूल को किस रस्ते से जाय

और हमारे व्यवस्थापक, हमारे रहनुमा धृतराष्ट्र हो गए हैं, उन्हें सिवाय हवाई किले बनाने के और कुछ नहीं सूझता, उन्हें गरीबों की जिंदगी से कोई सरोकार नहीं है, ये गरीब केवल वोट मांगते वक़्त आश्वासन देने के लिए याद आते हैं। वरिष्ठ दोहकार **श्री विज्ञान व्रत** जैसे ठण्डी आह भरते हुए इन रहनुमाओं की तरफ उंगली उठाते हैं-

राजा देखे महल से, खिड़की भर आकाश
फुटपाथों की जिंदगी, उसको दिखती काश!

आश्वासनों से अपनी दुकान चलाने वाले भाषणवीरों के विषय में दोहाकार **श्री कुँअर उदय सिंह 'अनुज'** कुछ इस प्रकार कहते हैं –

मेरे घर बरतन नहीं, हे वचनों के वीर
कैसे रखूँ सँभालकर, यह वादों की खीर

प्रतिष्ठित कवि **श्री हस्तीमल हस्ती** बिना लाग-लपेट के इस सन्दर्भ में दोहे के माध्यम से अपनी बात कुछ इस प्रकार रखते हैं –

हमने तो हर काल में, देखा यही विधान
राजा की रंगरेलियाँ, परजा का भुगतान

वरिष्ठ नवगीतकार **श्री रमेश गौतम** को अफसरशाही, माफिया और राजनीति के गठजोड़ का कोई तोड़ दिखाई नहीं देता, वे सीधे-सीधे कहते हैं –

अफसरशाही, माफिया, राजनीति-गठजोड़
अब तक इस जनतंत्र में मिला न इनका तोड़

फुटपाथों की जिन्दगी तो खैर इन राजनेताओं को दिखाई देती ही नहीं है इसके अतिरिक्त इन्होंने जन-जन को बाँटने में, इनके बीच दरार पैदा करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी है। जी हाँ, जनतंत्र में जनता लगातार बँटती जा रही है, जाति के नाम पर, आरक्षण के नाम पर, मजहब के नाम पर, भाषा के नाम पर, प्रदेश के नाम पर और न जाने कितने ही और भी मुद्दे हैं जो हमें लगातार बाँट रहे हैं, और हर मुद्दे के पीछे सिर्फ और सिर्फ राजनैतिक स्वार्थ नजर आते हैं। बेहद समर्थ और आधुनिक दोहा लेखन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले चर्चित दोहाकार **श्री हरेराम समीप** मनुष्य-मनुष्य के बीच होने वाले इस बँटवारे को कुछ यूँ परिभाषित करते हैं-

परिभाषा गणतंत्र की, अब इतनी है शेष?
अपने-अपने ध्वज लिए, खड़े देश में देश

मैं ये चाहता था कि आलेख में अपना कोई उद्धरण न दूँ लेकिन लोकतंत्र की बात पर लोभसंवरण कर पाना संभव नहीं हो रहा है। तब कहूँगा कि देश की आजादी के बाद जिस लोकतंत्र की परिकल्पना की गई थी, जिस तरह के खुशहाल देश की परिकल्पना की गई थी, क्या हम उसी जगह खड़े हैं, तब मैं **(अशोक अंजुम)** कहता हूँ-

साफ नजर आता नहीं, किस रस्ते पर हिंद
लोकतंत्र की आँख में, हुआ मोतियाबिंद

श्री रामबाबू रस्तोगी भी आधुनिक दोहे के एक चर्चित, सशक्त हस्ताक्षर हैं; राजनैतिक गलियारों के षड़यंत्रों के प्रभाव को प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए कहत हैं-

सत्ता के षड्यंत्र में, हवा हुई मशगूल
गुलदानों में सज गए, नागफनी के फूल

स्वतंत्रता के बाद सब स्वच्छंद हो गए, ख़ास तौर पर हमारे राजनेता, जिसकी परिणति हुई घोटालों के रूप में, एक से बढ़कर एक घोटाला! कितना ही पैसा स्विस बैंक में जमा हो गया, नेताओं और नौकरशाहों ने कुछ ऐसा रंग दिखाया कि **श्री योगेन्द्र मोदगिल** कहने लगे-

किस आजादी से बजा, आजादी का बैण्ड
सोने की चिड़िया उड़ी, सीधी स्विट्ज़रलैण्ड

इस पर ये राजनीति जो रंग न दिखा दे, वही कम! बड़े-बड़े चमत्कार यहाँ देखने को मिलते हैं, देखें कि **श्री जहीर कुरैशी** कितनी

खूबसूरती से इस राजनैतिक चरित्र को बयां करते हैं-

राजनीति में दोस्तो, कुछ भी नहीं विचित्र
अनायास पानी बना, अंगारों का मित्र

और इस राजनीति का एक दृश्य **श्री अश्वनी कुमार पाठक** कुछ यूँ दिखाते हैं -

संसद के इस सत्र में , खूब लड़ाई चौंच
तार -तार कुर्ते हुए, मन पर नहीं खरौंच

और सशक्त कवि **श्री हरीलाल मिलन** कहते हैं-

आश्वासन कें होंठ पर, ये भाषण के फूल
हमने सोचा आम हैं, लेकिन रहे बबूल

हम शिक्षित तो हुए हैं किन्तु कई मुहानों पर हमारी शिक्षा ताक पर रख जाती है। जब कोई डर हमारे दिलो-दिमाग पर छा जाता है तब हम जो रास्ता अख्तियार करते हैं, वह भारत की सारी दुनिया से अलग तस्वीर हमारे सामने रखता है। **श्री हरेराम** समीप कहते हैं-

अब भी अपना देश है, डर का बड़ा मरीज
यहाँ दवाओं से अधिक, बिकते हैं ताबीज

जब इलाज कराने में मरीज का सब कुछ दाँव पर लग जाय तो फिर ताबीज की खूब-खूब बिक्री स्वाभाविकही है ! युवा कवयित्री **गरिमा सक्सेना** कहती हैं -

हुई डॉक्टरी देश में, जबसे कारोबार
बीमारी में बिक गए, कितनों के घर-बार

चलिए आधुनिक दोहे के कुछ और रंग देखते हैं। **डॉ.उर्मिलेश** ने वर्तमान समय की विसंगतियों को, विडम्बनाओं को बड़े सलीके से अपने दोहों में पिरोया है। एक दृश्य ऐसा भी-

हैं उदास चौपाइयाँ, दोहे हैं हैरान
फिल्मी-धुन में हो रहा, अब मानस का गान

तथाकथित हिन्दी प्रेमियों की खोज ख़बर लेते हैं आधुनिक दोहे के एक और सशक्त हस्ताक्षर **श्री जय चक्रवर्ती**-

सिर्फ दिखाकर एक दिन, हिन्दी का कंकाल
ओढ़े रहते साल भर, अंग्रेजी की खाल

अन्धानुकरण आज की सभ्यता-संस्कृति का अंग है। और इस भेड़चाल में हम अपनी सामर्थ्य, अपनी क्षमताओं से परे कार्य करते हुए हास्यास्पद या कष्टकारी स्थितियों में जकड़ जाते हैं। **श्री देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'** के अनुसार-

राजमार्ग पर मेढकी, देख अश्व की चाल
रही सोचती पाँव में, ठुकवा ले वह नाल

चलिए अब जरा असंतुष्टि के इन चित्रों से परे हठकर तनिक श्रृंगार की बात करते हैं। रीतिकाल में यूँ तो **महाकवि बिहारी** ने श्रृंगार -वर्णन में शायद ही कुछ छोड़ा हो तथापि आधुनिक काल में दोहाकारों ने श्रृंगार की कोमल अनुभूतियों के अपने तरीके से बहुत ही मार्मिक चित्र दोहों में उकेरे हैं। **श्री यश मालवीय** आज की पीढ़ी के एक चर्चित हस्ताक्षर हैं, वे जो बिम्ब उकेरते हैं, जरा देखें-

माँग भरी तो गिर पड़ा, दरपन पर सिंदूर
सन्नाटे में बज उठा, सपनों का संतूर

और **आचार्य भगवत दुबे** की प्रेमिल अनुभूतियाँ-

स्वेटर में सपने बुने, मेंहदी में सिंदूर
गोरी ने महुआ चखे, अधर हुए अंगूर

हृदय अब भी रिश्तों की धमक, खनक महसूस करता है,और चीजें, स्थितियाँ कितनी भी बदल जाएँ, हम कितना भी पश्चिम का अनुकरण कर लें, किन्तु धमनियों में जो रक्त है उसमें हिन्दुस्तान की मिट्टी के संस्कार भी सहज रूप से प्रवाहित हो रहे हैं। आधुनिक दोहे के एक और बेहद चर्चित हस्ताक्षर **डॉ.रामनिवास मानव** कहते हैं-

जीवन में जब-जब मिले, खुशियाँ या अवसाद
अम्मा-बाबूजी सदा, रह-रह आते याद

उपरोक्त के अतिरिक्त अभी कितने ही ऐसे सशक्त दोहाकार हैं जो आज के समय और समाज पर पैनी नजर रखते हैं । **सर्वश्री कृष्ण कुमार नाज, किशोर काबरा, कुंदन सिंह सजल, डॉ. गोपाल राजगोपाल, गोविन्द सेन, जयकुमार रुसवा, देवेन्द्र आर्य, निदा फाजली, नरेश शांडिल्य, बनज कुमार बनज, मधुप्रसाद, मनोज अबोध, डॉ. मनोहर अभय, महेंद्र जैन, महेश दिवाकर, जयसिंह आशावत, योगेन्द्र वर्मा व्योम, भारतेन्दु मिश्र, रवीन्द्र रवि, राजेश जैन राही, यादराम शर्मा, डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, डॉ. राधेश्याम शुक्ल, श्लेष गौतम, शिवशरण दुबे, शिवमूर्ति सिंह, शिवानंद सिंह सहयोगी, सतीश गुप्ता, श्रीकृष्ण शर्मा, डॉ. सुरेश अवस्थी, संजीव सलिल, राजकुमार तिवारी 'सुमित्र', डॉ. मधु चतुर्वेदी, डॉ.श्याम मनोहर सीरोठिया**... आदि सैकड़ों दोहाकार वर्तमान परिदृश्य को अपने दोहों में सलीके से परोस रहे हैं।

तो अंततः यही कि आधुनिक दोहा आज के समय की हर धड़कन का पहरुआ बनकर हमारे सामने खड़ा है। भाषा के स्तर पर इस दोहे में कोई दुराग्रह नहीं है, यहाँ खड़ी बोली है, उर्दू के आम बोलचाल के शब्द हैं, तो अँग्रेजी के प्रचलित शब्दों से भी परहेज नहीं है। हाँ, ये भी जरूर है कि कुछ कमजोर दोहाकार निरे सपाट दोहों का भी ढेर लगाए जा रहे हैं; कुछ तथाकथित दोहाकार तो ऐसे हैं कि जहाँ कोई बिम्बधर्मिता नहीं है, कोई नवीन बोध नहीं, फिर भी सतसइयों के ढेर वहां लगे हैं, लेकिन ये ढेर बाढ़ में बहकर आये कचरे के समान बह जाने हैं; आधुनिक दोहे की बड़ी और मजबूत शिलाएँ ही स्थिर रहेंगी- सदियों तक, युगों-युगों तक!!



-अशोक 'अंजुम'
संपादकः अभिनव प्रयास (त्रैमासिक)
स्ट्रीट-2, चन्द्र विहार कॉलोनी (नगला डालचंद)
क्वारसी बाईपास, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
मो.09258779744

समकालीन दोहा की प्रकृति और प्रवृत्ति

'समकालीन दोहा', जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि समकालीन दोहा अपने समय की अभिव्यक्ति है। यह वह सामयिक अभिव्यक्ति है, जिसे कुशल दोहाकार अपनी लेखनी से सर्वकालिक बना देता है। यह वह अभिव्यक्ति है, जो अपने समय की विसंगतियों, विद्रूपताओं तथा आम आदमी के शोषण और उसके दुख-दर्द को प्रतिध्वनित करता है। 'समकालीन दोहा' समय की आवश्यकता है। यह समाज की प्रत्येक शोषित इकाई का वह स्वर है, जो शोषक के प्रतिपक्ष में शुभ की सत्ता की स्थापना के लिए तत्पर है। ऐसे में यह भी आवश्यक हो जाता है कि कथ्य के साथ भाव, बिम्ब तथा भाषा भी समकालीन हो। ऐसे में हिन्दी काव्य में सदियों से सिरमौर रहा दोहा छन्द स्वयं पर समकालीनता का उत्तरदायित्व लेकर अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति को विस्तृत आयाम प्रदान कर रहा है। किसी भी वस्तु का पहला अध्याय उसकी उपादेयता से प्रारम्भ होता है। यदि उसकी उपादेयता समाप्त हो जाती है, तो उस वस्तु का कोई मूल्य नहीं रह जाता। दोहे ने यह बात समझी और बीसवीं शताब्दी के तृतीयांश में अपने स्वर में आम आदमी की पीड़ा को मिला लिया। युगबोध के सापेक्ष दोहों में विद्रूपता को महाकवि कबीर ने अभिव्यक्ति अवश्य दी थी। उनके कई दोहे इसका प्रमाण हैं, किन्तु उनकी इस धारा का परवर्ती दोहाकारों ने उतना अनुकरण नहीं किया। यही कारण है कि कालान्तर में दोहा दरबारी भी हुआ और पारितोषिक पर जीवन-यापन करने वाले स्वनामधन्य कवियों ने सत्ता के प्रशस्ति तक सीमित करके दोहे के स्वरूप को न केवल संकुचित कर दिया, बल्कि और बाद में दोहे को सुन्दरी के नख-शिख के वर्णन के लिए भी अपहृत कर लिया। यह दुर्भाग्यपूर्ण था। यद्यपि मध्य के कालखंड में युगबोध के अनुरूप नीति और उपदेशपरक अनेक दोहों और दोहाकारों ने भटकी हुई मानवता का मार्गदर्शन किया। 'वर्ग-विभेद' का विरोध करते हुए अनेक दोहों ने सामाजिक समरसता का पाठ भी पढ़ाया। राजतंत्र के युग में एक कलमकार का सत्ता के विरोध में हुंकार भरना सहज भी नहीं था, किन्तु आम आदमी की आम पीड़ा का प्रकटीकरण कठिन भी नहीं था और कतिपय हुआ भी।

मिट्टी, स्टील या काँच के प्रयोग से गिलास का आकार दे देना सहज हो सकता है, एक कला हो सकती है, किन्तु उसमें हमें कौन-सी वस्तु और कितनी मात्रा में रखना है। यह विचार उतना ही आवश्यक है, जितना कि शीत में धूप और ग्रीष्म में शीतलता। बात इतनी है कि शिल्प के बाद कथ्य, बिम्ब, भाव, शैली आदि पर विमर्श होना चाहिए और इसके पश्चात् उससे उत्पन्न स्वर की यथार्थ उपादेयता का आकलन भी होना चाहिए। वर्तमान में अनेक प्रकार की विद्रूपताएँ और विसंगतियाँ हैं। यही कारण है कि 'समकालीन दोहा' ने युगबोध के सापेक्ष यह उत्तरदायित्व स्वयं के कंधों पर पूरी शक्ति के साथ उठा रखा है।

शताब्दियों पूर्व कबीर का यह स्वर समकालिक विद्रूपता का तीखा स्वर है, जहाँ तर्क की कसौटी पर परम्परा का आकलन भी है-

''पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते ये चाकी भली, पीस खाय संसार।।''

- कबीरदास

'समकालीन दोहा' की दृष्टि से विद्रूपता का कोई भी क्षेत्र शेष नहीं रह जाता। समकालीन दोहे की प्रकृति और प्रवृत्ति में राजनीति का विद्रूप चेहरा समाज के सामने लाने की अद्‍भुत क्षमता है। एक कलमकार के लिए राजनीति और सत्ता के षड़यंत्रों का पर्दाफाश कर पाना दोधारी तलवार पर चलने से कम नहीं। सत्ता के समक्ष शीश उठाकर, सीना तानकर तथा आँख से आँख मिलाकर सच लिख पाने का साहस समकालीन दोहे में है-

''आज गहन है भूख का, धुँधला है आकाश।
कल अपनी सरकार का, होगा पर्दाफाश।।''

- नागार्जुन

आम आदमी का प्रथम और शाश्वत संघर्ष पेट की भूख मिटाने का उपक्रम है। एक ओर सत्ता की गोद है, निश्चिन्तता है, तो वहीं दूसरी ओर परिवार के लिए दो जून की रोटी का जुगाड़ है, इस जुगाड़ में आम आदमी जीवन भर अपना खून-पसीना एक किये रहता है-

''उतरे अंधी घाटियाँ, ढोये नित्य पहाड़।
हम दो रोटी के लिए, करते रहे जुगाड़।।''

- देवेन्द्र शर्मा ''इन्द्र''

ऐसे में खून-पसीना एक करने के बावजूद सत्ता और शोषक वर्ग गोटियाँ बिछाते हैं, क्योंकि उनकी नजर में आम आदमी मछली है और वे स्वयं मछुआरे। जब मुखौटा लगाये नाकाम व्यवस्था सामान्य जन के सपनों का चीरहरण करती है और विश्वास छलनी हो जाता है, तब आम आदमी के हक में निर्भीक होकर सब कुछ सही-सही बताने हेतु 'समकालीन दोहा' व्यापक बिम्ब और गहन बोध लेकर जन-जन

के समक्ष जन-जन के पक्ष में खड़ा हो जाता है-

''दहशत में हैं मछलियाँ, सकते में हैं ताल।
मछुआरों ने हर तरफ, डाल दिये हैं जाल।।''

- जय चक्रवर्ती

इन मछुआरों की कुदृष्टि में आदमी, आदमी नहीं होता, बल्कि हर आदमी एक 'वोट' होता है। इस 'वोट' को हासिल करना एक कला होती है और इसके लिए कई बार ऐसे जाल बुने जाते हैं कि यथार्थ और निहितार्थ बहुत बाद में समझ में आते हैं। यहाँ पर 'समकालीन दोहा' निष्पक्ष प्रहरी बनकर खड़ा होता है, जिसकी आँख से कुछ भी बच पाना सम्भव नहीं होता, तो ऐसा क्यों है, दो टूक कह सकने में समकालीन दोहा समर्थ है-

''उनके हाथों तेग है, इनके तीर कमान।
खड़ा बीच में आदमी, होकर लहूलुहान।।''

- दिनेश शुक्ल

''संविधान की धज्जियाँ, उड़ा रहे ये कौन।
इस सवाल के सामने, सारी संसद मौन।।''

- कैलाश गौतम

'समकालीन दोहा', एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य के बीच सामाजिक, आर्थिक या किसी भी प्रकार के विभेद का तिरस्कार करता है। समकालीन दोहा जातिवाद, भाषावाद, संप्रदायवाद, वर्गभेद, रंगभेद, नस्लभेद आदि सभी से दूर अपने तीखे व्यंग्य से मानववाद की संकल्पना को बल प्रदान करता है। इसके पीछे एक नहीं अनेक कारण हैं। सदियों से बह रही शोषण की अविरत धारा ने आम आदमी को पग-पग पर विवश किया है। यहाँ पर 'समकालीन दोहा' व्यंग्य की पैनी धार के साथ प्रहार करता है-

''महँगाई ने थाम कर, हाथों में बंदूक।
दुखिया से खुलवा लिया, पुरखों का संदूक।।''

- अशोक अंजुम

''क्यों रे दुखिया क्या तुझे, इतनी नहीं तमीज।
सुखिया के घर आ गया, पहने नयी कमीज।।''

- हरेराम समीप

आजादी के इतने वर्षों बाद आधी आबादी आज भी अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही है। वह अपनों के बीच ही शोषण के लिए विवश है। उसे अपनों से भी लड़ना है और परायों से भी। सुप्रसिद्ध विद्वान रायबर्न लिखते हैं- **''स्त्रियों ने ही प्रथम सभ्यता की नींव डाली है और उन्होंने ही जंगलों में मारे-मारे भटकते हुए पुरुषों को हाथ पकड़कर अपने स्तर का जीवन प्रदान किया तथा घर में बसाया।''** अब एक बड़ा प्रश्न यह है कि जिस समाज में कन्या को देवी कहकर पुकारा जाता है और सदियों से स्त्री के देवी स्वरूप की पूजा की जाती है, उसी समाज में उसकी अस्मिता पर दिन प्रतिदिन चोट क्यों? इस दोहरी मानसिकता पर 'समकालीन दोहा' बेबाकी से अपनी बात कहता है-

''देवी कहकर पूजते, करते फिर आखेट।
जिस्म बेचकर भर रही, नारी अब भी पेट।''

- रघुविन्द्र यादव

'समकालीन दोहा' अपने कथ्य में जीवन की प्रत्येक विसंगति और विसंगति से उत्पन्न प्रत्येक दृश्य को समेट लेता है। समकालीन दोहा समाज और जनजीवन में व्याप्त विडम्बनाएँ देखकर व्यथित होता है, तो एक बालक की भाँति तर्क करता है। सदियों से चली आ रहीं उन परम्पराओं का वैज्ञानिक परीक्षण भी करता है, जहाँ पर सभी के लिए बने संसाधन किसी वर्ग विशेष के हो जाते हैं-

''बच्चा बोला देख कर, मस्जिद आलीशान।
अल्ला तेरे एक को, इतना बड़ा मकान।।''

- निदा फाजली

''गंगा जी से क्या जुड़ें, पितरों के सम्बन्ध।
जब पंडों के हाथ हों, घाटों के अनुबन्ध।।''

- सूर्यभानु गुप्त

'समकालीन दोहा' जब अपने भीतर जीवन और समाज से जुड़ी प्रत्येक विसंगति को समेटने का उपक्रम करता है, तब वह सबसे पहले मुखौटा लगाये इन्सान की परत दर परत उधेड़ देता है। तब वह गिरते मानवीय मूल्यों और टूटते घर-परिवारों की व्यथा को भी अपनी स्याही में घोल लेता है। तब 'समकालीन दोहा' अनेक बन्दिशों के बावजूद यथार्थ उद्घाटित करने में तनिक भी नहीं हिचकता-

''लोग यहाँ बहुरूपिए, उनकी कथा न छेड़।
भीतर से हैं भेड़िए, ऊपर से हैं भेड़।।''

- उदयभानु हंस

''जिन बेटों पर बाप ने, वार दिया संसार।
बाप उन्हीं के वास्ते, अब रद्दी अख़बार।।''

- जय चक्रवर्ती

''समय-समय की बात है, और समय का योग।
लाखों में बिकने लगे, दो कौड़ी के लोग।।''

- माणिक वर्मा

''जब से नगरी में बना, चुप रहना कानून।
हम जैसों की चुप्पियाँ, और हुईं बातून।।''

- विज्ञानव्रत

'समकालीन दोहा' नवयुग के दोहरे मापदंडों से प्रत्येक पग पर अपना विरोध जताता है और सत् की स्थापना के लिए इन पर तीखा व्यंग्य करता है, तो व्यथित भी होता है। वह अपने कथ्य के लिए बिम्बों का चयन अपने आसपास ही खोज लेता है, जहाँ अभिव्यंजना की अनुगूँज गुदगुदाता है, तो प्रश्न भी छोड़ देता है-

''युग विकल्प का आ गया, बदल गये आयाम।
बिजलीघर में हो रहा, जनरेटर से काम।।''

- कैलाश गौतम

''वक़्त खेलता है सदा, अजब अनोखे खेल।
कल पटरी थी रेल पर, अब पटरी पर रेल''।।

- रघुविन्द्र यादव

यांत्रिकता के बाहुपाश में जकड़े मानव को महानगरीय जीवन विचलित करता है, तो 'समकालीन दोहा' अन्तर का द्वन्द्व सामने ला देता है और भौतिकता की आड़ में छले जाने की टीस भी प्रकट करता है-

''महानगर में मैं बसा, मुझमें मेरा गाँव।
जिये जा रहा हूँ रखे, दो नावों में पाँव।।''

- राधेश्याम शुक्ल

''केला, बिस्कुट, संतरा, गुड्डा, गुड़िया गेंद।
सब कुछ गायब हो गया, किसने मारी सेंध।।''

- यश मालवीय

समस्त विद्रूपताओं को समाप्त कर सच्चा मनुष्य बन पाने का संकल्प 'समकालीन दोहा' का यथार्थ है-

''जीने को हमको मिले, यद्यपि दिन दो-चार।
जिएँ मगर हम इस तरह, हर दिन बनें हजार।।''

- गोपालदास नीरज

''मूरख तुम हिन्दू रहे, हम मुसलिम नादान।
रोग लगा कुछ इस तरह, बन न सके इन्सान।।''

- बेकल उत्साही

इस लेख के अन्तर्गत 'समकालीन दोहा' की प्रकृति और प्रवृत्ति के सन्दर्भ में विमर्श प्रस्तुत किया गया है। समकालीन दोहे की आवश्यकता और स्वीकृति को स्पष्ट करने के उद्देश्य से कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये हैं। मैं एक बात यह भी कहना चाहूँगा कि कही-कहाई बातों को आधार बनाकर, यानी कि जो चीजें पहले से लिखी जा चुकी हैं, उन पर अपना मुलम्मा चढ़ाकर दोहे लिखने का कोई औचित्य नहीं है। शिल्प, शैली, कथ्य तथा भाषा के स्तर पर नवीनता और चिन्तन आवश्यक है। सपाटबयानी और बात-बात पर अनावश्यक दोहे लिखने का कोई औचित्य नहीं है। सृजन में उत्पादन नहीं गुणवत्ता मायने रखती है। याद रखना चाहिए कि दोहा एक लघुविधा है और लघुविधा में इतना 'स्पेस' नहीं होता। समकालीन दोहे में अनावश्यक देशज शब्दों का प्रयोग न हो। आय, जाय, खाय, लगाय आदि, इस तरह के शब्दों के प्रयोग समकालीन दोहे में मान्य नही हैं। तुकबन्दी और मात्राओं की पूर्ति के लिए यह उचित नहीं है। ऐसे प्रयोग 'समकालीन दोहा' के शिल्प और सौन्दर्य को बाधित करते हैं। यदि नाम को लेकर विमर्श करें, तो दोहे के वर्तमान स्वरूप को 'नव दोहा' और 'आधुनिक दोहा' नाम से भी अभिहित किया जाता है। 'समकालीन दोहा' नाम स्वयं में सर्वकालिक है। मूल्य और संस्कार समय के साथ बदलते हैं। ऐसे में 'समकालीन दोहा' नाम की उपादेयता सदैव बनी रहेगी।



- डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर'
सम्पर्कः अध्यक्ष- अन्वेषी संस्था
24/18, राधा नगर, फतेहपुर (उ.प्र.)
पिनकोड-212601
मो.-9839942005

दोहा छंद की यात्रा और आधुनिक दोहे

भारतीय सनातनी छंदों में दोहा छंद सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है। दोहा छंद के उद्भव को लेकर विद्वानों में मत-मतान्तर हैं परन्तु संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश से इसका प्रारंभ माना जा सकता है। संस्कृत में कालिदास द्वारा प्रयुक्त अनुष्टुप छंद तथा द्विपथा में दोहे से समानता प्रतीत होती है। कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' में दोहे जैसे छंद का प्रयोग किया गया है।

संस्कृत के बाद प्राकृत भाषा में दोहाड़िका तथा गाथा का प्रयोग मिलता है, जो दोहे के सन्निकट जान पड़ता है। आठवीं शताब्दी में सिद्ध कवियों के द्वारा दोहा छंद में प्रचुर साहित्य रचा गया है। इनमें हिंदी के आदि कवि सरहपा कृत 'दोहाकोश' सबसे प्रसिद्ध है।

आदिकाल के कवि चन्दबरदाई ने दोहे के माध्यम से पृथ्वीराज चौहान को शब्दभेदी बाण के लिये जो निर्देश दिया वह आज भी वीरगाथा साहित्य का अभिन्न अंग है-

चार बाँस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण।
ता ऊपर सुल्तान है, मत चूको चौहान।।

आदिकाल के ही एक अन्य महत्वपूर्ण कवि अमीर खुसरो जिन्होंने छंदों के अनेक लोकप्रिय प्रयोग किये हैं ने मुकरियों और पहेलियों सहित अनेक दोहों की रचना की।

मध्यकाल में जायसी, कबीर, तुलसी, रहीम, रीतिकाल में बिहारी, भारतेन्दु युग में वृन्द जैसे रचनाकारों ने दोहा को सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न छन्द के रूप में प्रतिष्ठित किया है। जहाँ भक्तिकाल के दोहों में नीति, भक्ति से संपृक्त होकर उभरी है वहीं रीतिकाल में इसके स्वरूप में परिवर्तन आ गया। रीतिकाल में नीति का संबंध आध्यात्म जगत से न होकर सीधे-सीधे लोक व्यवहार से संबद्ध हो गया। इस काल के प्रसिद्ध नीति-काव्यकारों में गिरधर, वृन्द, घाघ, बैताल, सम्मन, दीनदयाल गिरि आदि प्रमुख माने जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोहों में कबीर का फक्कड़पन है, तुलसी की भक्ति है, रहीम और वृंद की नीतिपरक बातें हैं, तो बिहारी और खुसरो का शृंगार भी है। इन रचनाकारों के अलावा तानसेन, दादूदयाल, शेख फरीद, केशवदास, सूरदास, जान कवि, रज्जब, मलूकदास, सुन्दरदास, गरीबदास, रसनिधि, मतिराम, गुरु तेगबहादुर, भूपति, गुरु गोविंदसिंह, दरिया साहब, चरणदास, दयाबाई, पलटू साहब, मुरलीधर चतुर्वेदी, गुलाल साहब, सहजोबाई, दयाराम, विक्रमसिंह, रामसहाय, बुधजन, रामचरित उपाध्याय, भगवानदीन आदि अनेक कवियों ने दोहा छंद को समृद्ध किया है। इन प्राचीन कवियों ने इस छंद में अपनी सृजन क्षमता दिखाकर न सिर्फ अपने दोहों को अमर किया है बल्कि हिन्दी साहित्य को भी मालामाल किया है।

भारतेन्दु युग से ही हिंदी कविता के स्वरूप में परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। यह वह समय था जब कजली, ठुमरी, खेमटा, कहरवा, श्रद्धा, चैती, होली, सांझी, लावनी, बिरहा, चनैनी आदि लोकछंदों पर रचनाएँ लिखी जाने लगीं। इसके बाद आधुनिक काल में छायावादी गीत, नई कविता, नवगीत, हिंदी गजल जैसी काव्य विधाओं से हिंदी साहित्य पट गया। यह वह समय था जब कविता में विषय-परिवर्तन हुआ और वह भक्ति, नीति और शृंगार से बाहर निकल राष्ट्रीय चेतना से होते हुए प्रगतिशील और जनवादी तेवर तक पहुँची। इस दौरान अकविता आंदोलन ने छंद-कविताओं पर कुठाराघात किया। पत्र-पत्रिकाओं में छंद-कविताएँ अपनी जमीन तलाशने लगीं। ऐसा नहीं है कि आधुनिक काल के प्रारम्भ में दोहे नहीं लिखे गये इस काल में वियोगी 'हरि', विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक', रामरज शर्मा 'पंकिल' जैसे कई कवियों ने राष्ट्रीय चेतना तथा आधुनिक युगबोध के दोहे लिखे जिनका स्वर जनपक्षीय था। यदि दोहा छंद के पुनर्उत्थान की बात करूँ तो बीसवीं सदी के अंतिम दशक से लेकर अभी तक के समय को दोहा छंद का पुनर्उत्थान काल कह सकते हैं। यह वह समय है जब दोहा की पंचशती, सतसई, हजारा जैसी परम्परा दुबारा प्रारम्भ हुई। यह कहना गलत नहीं होगा यह वह समय है, जब अन्य छंद कविताएँ अपने लिये जमीन तलाश रहीं हैं वहीं दोहा का सृजन निरंतर बढ़ता जा रहा है, शायद मध्यकाल से भी अधिक।

समय के साथ-साथ दोहे की भाषा, कथ्य व कहन में भी परिवर्तन आया है, और इस बदलते काल व परिवेश में दोहे की यही अनुकूलनता व सुग्राह्यता इसे आधुनिक बनाती है। आधुनिक दोहे में केवल नीति, भक्ति, शृंगार न होकर सामाजिक, राजनैतिक यथार्थ तथा जनसामान्य का स्वर मुखरित हुआ है। इसकी भाषा में खड़ी हिंदी के साथ उर्दू और अँग्रेजी के प्रचलित शब्द भी समाहित हुए हैं। वर्तमान समय में जब दोहों का निरंतर सृजन हो रहा है या यूँ कहें विभिन्न फेसबुक व व्हाट्सेप समूहों में सृजन की प्रोडक्टिविटी तेज हो गयी है में क्वालिटी (गुणवत्ता) का ह्रास भी उतनी ही तेजी से हुआ है। दोहा तेरह और ग्यारह के मात्रा समूह में बँधे एक साधारण वाक्य की तरह प्रस्तुत किया जा रहा है।

दोहा छंद की विशेषता हमेशा से उसकी मारक क्षमता उसका नुकीलापन, उसका अर्थ विस्तार रही है। बिहारी के दोहों के लिये कहा गया-''देखन में छोटन लगें घाव करें गम्भीर'', दोहों का मानक वाक्य साबित हुआ है। दोहा सपाटबयानी तो नहीं हो सकता जैसे गजल के

शेरों के लिये शेरियत आवश्यक है वैसे ही दोहों के लिये उसका नुकीलापन जिसे मैं अपने शब्द में दोहियत कहती हूँ, जो किसी विस्फोट की तरह मन और मस्तिष्क पर गहरा तथा दीर्घकालिक प्रभाव छोड़ता हो, आवश्यक है। जय चक्रवर्ती जी इस संदर्भ में कहते हैं- ''समकालीन दोहे का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें हमारे समय की परिस्थितियों, जीवन संघर्षों, विसंगतियों, विद्रूपताओं, दुखों, अभावों और उनसे उपजी आम आदमी की पीड़ा, आक्रोश, क्षोभ को सशक्त स्वर की उपस्थिति प्रदर्शित होने के साथ मुक्ति के मार्ग की संभावनाएं भी दिखाई दें। हमारे बहुत सारे मित्र दोहे के फॉर्म में सपाटबयानी अथवा अखबारी सूचनाएं या कबीर, रहीम, तुलसी आदि पुराने कवियों द्वारा कही गई बातों को इधर उधर शब्द बदलकर दोहे लिखकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर रहे हैं। इससे आपके दोहों की संख्या भले ही बढ़ जाए, किंतु मौलिकता के अभाव में ऐसे दोहे अपनी छाप छोड़ने में कामयाब नहीं होते।''

किसी भी विधा के चिरकालीन होने के लिये आवश्यक है उसका समकालीनता बनाये रखना। इस परिवर्तन को ध्यान में रखकर प्रोफेसर देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र' आधुनिक या समकालीन दोहा छंद की निम्नलिखित विशेषता बताते हैं-''दोहा, छंद की दृष्टि से एकदम चुस्त-दुरुस्त और निर्दोष हो। कथ्य सपाट बयानी से मुक्त हो। भाषा चित्रमयी और संगीतात्मक हो। बिम्ब और प्रतीकों का प्रयोग अधिक से अधिक मात्रा में हो। दोहे का कथ्य समकालीन और आधुनिक बोध से सम्पन्न हो। उपदेशात्मक नीरसता और नारेबाजी की फूहड़ता से मुक्त हो।''

आधुनिक दोहा के लिये अशोक अंजुम जी लिखते हैं- ''आज के समय में अगर दोहा रचना है तो आज की नब्ज को पकड़ना आना चाहिए। दोहा-सृजन में पहचान बनाने के लिये आधुनिकता बोध की महती आवश्यकता है। कथ्य के स्तर पर हमारे पूर्वज दोहाकार, संत कवियों ने इतने उपदेश इस दोहे के माध्यम से दिये हैं कि नैतिकता के स्तर पर तो कहने को अब कुछ खास बचता नहीं है। तब नये तरीके से नयी बात कहना जरूरी है।''

हरेराम समीप जी परम्परागत और आधुनिक दोहे का भेद स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- ''परम्परागत दोहों से आधुनिक दोहे का सौन्दर्यबोध स्वाभाविक रूप से बदला है। आध्यात्म, भक्ति और नीतिपरक दोहों के स्थान पर अब वह उस आम-जन का चित्रण करता है, जो उपेक्षित है, पीड़ित है, शोषित है और संघर्षरत है। इस समूह के दोहे अपने नये अंदाज में तीव्र और आक्रामक तेवर लिये हुए हैं। अतः जो भिन्नता है वह समय सापेक्ष है। इसमें आस्वाद का अन्तर प्रमुखता से उभरा है। इन दोहों में आज का युगसत्य और युगबोध पूरी तरह प्रतिबिंबित होता है।''

कविताकोश के उपनिदेशक राहुल शिवाय जी कहते हैं- ''आधुनिक दोहे, व्याकरणीय दृष्टि से पुष्ट वे दोहे हैं जो उक्ति-वैविध्य, प्रतीकों, बिम्बों, या चित्रात्मकता के माध्यम से सम्प्रेषणीयता को उस स्तर तक ले जाते हैं जहाँ पाठकों/श्रोताओं को नवीनता का बोध होने लगता है तथा उन्हें अपना समय और वैश्विक परिवेश साफ-साफ नजर आता है। आधुनिक दोहे खड़ी बोली, उर्दू के आम बोलचाल के शब्द के साथ अँग्रेजी के प्रचलित शब्दों से भी परहेज नहीं करते हैं।''



-गरिमा सक्सेना
संपर्कः- 212 ए-ब्लॉक, सेंचुरी सरस अपार्टमेंट,
अनंतपुरा रोड, यलहंका, बैंगलोर,
कर्नाटक-560064 मोः 7694928448
ईमेल-garimasaÛena1990@gmail-com

समाचार पत्र पंजीयन (केन्द्रीय) कानून 1956 आठवें नियम के अन्तर्गत आपेक्षित
'दि अण्डरलाइन' नामक मासिक पत्रिका से सम्बन्धित स्वामित्व और अन्य बातों का ब्यौरा
फार्म-4 (नियम 8 देखिये)

दि अण्डरलाइन

प्रकाशक स्थान - कानपुर नगर
प्रकाशक अवधि - मासिक
मुद्रक का नाम - डॉ. प्रेम स्वरूप त्रिपाठी
राष्ट्रीयता - भारतीय
पता- 127/122 W2 जूही कलां, कानपुर- 208027
प्रकाशक का नाम - डॉ. प्रेम स्वरूप त्रिपाठी
राष्ट्रीयता - भारतीय
पता- 127/122 W2 जूही कलां, कानपुर- 208027
संपादक का नाम - डॉ. प्रेम स्वरूप त्रिपाठी
राष्ट्रीयता - भारतीय
पता- 127/122 W2 जूही कलां, कानपुर- 208027

उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र में स्वामी हों तथा समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार व हिस्सेदार हों - डॉ. प्रेम स्वरूप त्रिपाठी

मैं डॉ. प्रेम स्वरूप त्रिपाठी एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक 01 मार्च 2021

डॉ. प्रेम स्वरूप त्रिपाठी
स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक के हस्ताक्षर

विरासत

जहि मन पवन न संचरई, रवि शशि नाहिं प्रवेश।
तहि बढ़ चित्त विसान की, सरहे कहिअ उवेश।।
(सरहपा)

कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खइयो माँस।
नैना दोऊ छोड़ियो, पिया मिलन की आस।।
(बाबा फरीद)

जिसके पल्ले धनु बसै, उसका नाम फकीर।
जिसके हिरदय तू बसै, ते नर गुणी, अहीर।।
(गुरुनानक)

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केश।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुं देस।।
(अमीर खुसरो)

बाँह छुड़ाए जात हौ, निबल जानिके मोहि।
घट से जबहीं जाइगौ, सबल बखानूँ तोहि।।
(सूरदास)

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।
(कबीर)

अमिय हलाहल मद भरे, सेत श्याम रतनार।
जियत-मरत झुक-झुक परत,जेहिं चितवत इक बार।।
(रसलीन)

कनक छड़ी-सी कामिनी, काहे को कटि छीन।
कटि को कंचन काढ़ि कै, कुचन बीच धरि दीन।।
(आलम और शेख)

चार बाँस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमान।
ता ऊपर सुल्तान है, मत चूको चौहान।।
(चंदबरदाई)

सबहिं कटक सूरा नहीं, कटक माहिं इक सूर।
दरिया पड्यो पतंग ज्यों, जब बाजो रणतूर।।
(दरिया साहेब)

प्रेम अगम, अनुपम, अमित, सागर सरिस बखान।
जो आवत एहि ढिंग बहुरि, जात नाहिं रसखान।।
(रसखान)

साँचु कहै, जग जरि मरै, झूठी बहुत हिताय ।
साँचन की निंदा करै, पाखंड पूजै जाय।।
(संत मीता)

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बिंध्यों, आगे कौन हवाल।।
(महाकवि बिहारी)

समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक।।
(रहीम)

पिउ सों कहेउ सन्देसड़ा, हे भौंरा! हे काग!!
जो घनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुआँ हम्ह लाग।।
(मलिक मुहम्मद जायसी)

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम ।
दास मलूका कहि गये, सबके दाता राम।।
(मलूक दास)

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग।।
(तुलसीदास)

करत-करत अभ्यास के, जड्मति होत सुजान।
रसरी आवत-जात तें, सिल पर परत निशान।।
(वृन्द)

जब लगि तुझमें तू रहै, तब लगि वह रस नाहिं।
रज्जब आपा अरपि दै, तौ आवै हरि माँहिं।।
(संत रज्जब)

चलती चाकी काल की, पिसे सकल संसार।
लिपट गए जो मूठ से, पिसे न एकहु बार।।
(कमाल कवि)

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।
(भारतेन्दु हरिश्चंद्र)

कहाँ बिहारी लाल हैं, कहाँ दुलारे लाल।
कहाँ मूँछ के बाल हैं, कहाँ पूँछ के बाल।।
(पं.सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला')

हमारी पसंद

जली ठूँठ पर बैठकर, गई कोकिला कूक।
बाल न बाँका कर सकी, शासन की बंदूक।।
(नागार्जुन)

डाकू आयें रात में, दिन में थानेदार।
दोनों के बंदूक हैं, दोनों हैं सरकार।।
(मानबहादुर सिंह)

हमतों बस इक पेड़ हैं, खड़े प्रेम के गाँव।
खुद तो जलते धूप में, दें औरों को छाँव।।
(गोपालदास 'नीरज')

मैं रोया परदेस में, भीगा माँ का प्यार।
दुख ने दुख से बात की, बिन चिट्ठी बिन तार।।
(निदा फाजली)

हर विक्रम की पीठ पर, बैठा इक बेताल।
सच्चा उत्तर चाहता, देकर गलत सवाल।।
(देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र')

अंदर गूँगा है मियाँ , बाहर आँख न कान।
जो भी इसको चीन्ह ले, वही बड़ा विद्वान।।
(बेकल उत्साही)

प्रेम, रूप, रस, गंध हैं, जीवन के आधार।
ये सब घर हैं काँच के, इन्हें न पत्थर मार।।
(माणिक वर्मा)

सच्चा साधू आइना, रहता कभी न मूक।
चाहे रख दो वक्ष पर, भरी हुई बंदूक।।
(डॉ. इसाक अश्क)

एक दर्द आँसू बना, एक दर्द संगीत।
एक दर्द कसका सदा, बनकर मन का मीत।।
(श्रीकृष्ण शर्मा)

आज राज दरबार में, यह दस्तूर अजीब।
राजा का मुँह तक रहे, कासा लिए अदीब।।
(भगवानदास एजाज)

रोनी सूरत मत बना, हँसकर दुख को जीत।
घात और प्रतिघात का, प्रतिफल है संगीत।।
(डॉ. उर्मिलेश)

आँगन में पत्थर बिछे, घर है लहूलुहान।
सारी बस्ती हो गयी, मजहब की दूकान।।
(कुमार रवीन्द्र)

हत्या, रिश्वत, तस्करी, खुलकर भ्रष्टाचार।
आभूषण हैं समय के, पहनो राजकुमार।।
(डॉ. शिवबहादुर सिंह भदौरिया)

कितने बादल चुक गए, चुका न दृग का नीर।
मुझसे सागर पूछता, कितनी गहरी पीर।।
(जगत प्रकाश चतुर्वेदी)

फीकी-फीकी चाँदनी, सूरज है निस्तेज।
गोरी कुछ इमदाद कर, अपना चेहरा भेज।।
(सरदार आसिफ)

रात-रात चिट्ठी लिखी , तेरी सुधि के नाम।
तेरे पते अनेक हैं, भेजूँ किस-किस ग्राम।।
(गंगा प्रसाद शर्मा)

वर्ण-वर्ण के फूल हैं, किसिम-किसिम की गंध।
चार चरण का दोहरा, नवरस का अनुबंध।।
(शंकर सक्सेना)

आखिर क्यों मानूँ भला, किस्मत से मैं हार।
जब तक मेरे हाथ है, मेहनत की तलवार।।
(सिब्बन बैजी)

एक मुखी रुद्राक्ष-सा, तुमसे पाया नेह।
पल में अभिमंत्रित हुई, यह चन्दन-सी देह।।
(उमा श्री)

जब तक हिन्दी कर रही, भारत में फरियाद।
तब तक देश गुलाम है, नहीं हुआ आजाद।।
(हुल्लड़ मुरादाबादी)

अमन' तुम्हारी चिट्ठियाँ, मैं रख सकूँ संभाल।
इसीलिए सन्दूक से, गहने दिये निकाल।।
(अमन चाँदपुरी)



-अंबिका प्रसाद शुक्ल 'अंबिकेश'
121/1 साइट-1, किदवई
नगर,कानपुर
मो : 9795621207

दलबदलू भारत भरे, बादल बदलू व्योम।
क्यों न व्यवस्था परस्पर, लागै लोम-विलोम॥

चले जात हैं सड़क पै, सब नर-नारि समान।
जैसों जाको मर्तबों, तैसी ताकी सान॥

पितर तरे जग जस मिले, सेवा करें कमाय।
बंस चले वैभव बढ़े, सोइ सपूत कहाय॥

ऐसे करत प्रभाव कहुँ, उपदेसन के श्रोत।
ज्यों सिगरिट डिब्बीन में, लिख्यो 'हानिकर' होत॥

चिलम पियें अति चाव सों, गहि साफी की कोन।
मानो संकर सों करें, दुख को टेलीफोन॥



-आचार्य रामसिंह 'विकल'
235, संजय नगर, मछरिया रोड
नौबस्ता, कानपुर नगर
मो. 99185 71946

नीति नेह के गाँव में, लगी हुई है आग।
धू धू करता जल रहा, धरती का अनुराग॥

हम समझे कुछ और थे, दुनिया है कुछ और।
छल प्रपंच के जाल फँस, मिला न कोई ठौर॥

अन्तर्मन में उठ रहा, रह-रह कर भूचाल।
सत के राही चल पड़े, उल्टी चाल-कुचाल॥

सदा बनाए हम रहें, संस्कृति का आधार ।
इससे होने दें नहीं, वणिजों-सा व्यापार॥

मानवता के देश में, गुंडों का अब राज।
भीख माँगते फिर रहे, इंसानी सरताज॥



-डॉ. आर.पी. सारस्वत
100, पंत विहार,
सहारनपुर-247001 (उ.प्र.)
मो. 9557828950

नयनों की भाषा प्रबल,जन्म-जन्म की चाह।
लगा हुआ है आदमी, लेने इनकी थाह॥

लादे सिर पर आदमी, इच्छाओं का भार।
जीना यदि सुख-चौन से, इनको फेंक उतार॥

मिथ्या अभिवादन लिए, विश्वासों के संग।
बदल रहा है आदमी, पल-पल अपना रंग॥

नित्य कसम खाता नई, नित्य उन्हें दे तोड़।
असमंजस में आदमी, कृत्य करे बेजोड़॥

व्यर्थ प्रदर्शन में लगा, यहाँ आदमी खूब।
पर भूला, बस अंत में, जमे देह पर दूब॥



-कैलाश बाजपेयी
128/862, वाई ब्लॉक, किदवईनगर,
कानपुर -208011
ई-मेल: bajpaikailash51@gmail-com

सबला है अबला नहीं, उड़ती अंबर छोर।
बेटी की यश–कीर्ति अब, फैली चारो ओर॥

बेटी सबसे पूछती, है उसका घर कौन।
इस पर सभ्य–समाज के, सभी पुरोधा मौन॥

बेटी सोचे गर्भ में, खतरे में है जान।
पता नहीं कब जग उठे, धरती का शैतान॥

हिन्दी निर्धन ही रही, अँग्रेजी समृद्ध।
अँग्रेजी तन कर खड़ी, हिन्दी है करबद्ध॥

हिन्दी ने सिखला दिया , आजादी का मोल।
हिन्दी ही कहती हमें, तोल मोल के बोल॥



-श्री कान्त तिवारी 'कान्त'
काव्य कुंज, मोहम्मदी रोड,
गोला गोकर्णनाथ, लखीमपुर, खीरी
मो. 9454506418

आया लौट अषाढ़ घर, ले वर्षा का दौर।
बंजारे अब ढूँढते, अपना-अपना ठौर॥

जब तक बरसे थे नहीं, ताने रहे गुलेल।
बरसे बादल खेलते, धूप-छाँव का खेल॥

बादल फिर फटने लगा, टूटे सभी पहाड़।
एक तरफ सूखा पड़ा , एक तरफ है बाढ़॥

बादल जल पीने लगे, वृक्ष माँगते आम।
अब तो मेरे देश का, भला करेंगे राम॥

आया सावन लौट कर, एक साल के बाद।
जो नदियाँ सूखी दिखीं, उन्हें किया आबाद ॥



-डॉ. देवी चरण कश्यप 'अक्स'
221/ई-1 ब्लॉक, केडीए कॉलोनी,
देहली सुजानपुर (श्याम नगर),
कानपुर-208013 मो : 7897833118

चाहे मानो बात तुम, चाहे जाओ रूठ।
सत्य कभी हारा नहीं, हारेगा बस झूठ॥

ऊँची भरो उड़ान पर, करो नहीं अभिमान।
वहाँ ठहरने के लिए, कोई नहीं मकान॥

प्यार-मुहब्बत के लिए, लड़ी गई थी जंग।
हँसी-खुशी अब रह रहे, लैला-मजनू संग॥

बाहर से जो दिख रहे, भले-भले इंसान।
इनके अंदर झाँकिए, बैठा है शैतान॥

बिना खौफ के गिद्ध अब, करते पापाचार।
हे प्रभु! अपने बाण से, कर दो अब संहार॥



-नंदीलाल 'निरास'
जनता टेंट हाउस, खुटार रोड, गोला(खीरी) उ.प्र.
मो: 9918879903

थपकी देकर कान में, सुना नेह के छंद।
होठ चूमकर ले गया, भ्रमर चूस मकरंद॥

पसरे सुघर सुवास सम, आँगन और अलिंद।
पूनम –सा खिलता रहा, प्रिय आनन अरविंद॥

अलंकार रस छंद हो, भावपरक हो तथ्य।
कविता को सौंदर्य दे, शब्द, शिल्प, लय, कथ्य॥

मिल जाएँ हर पृष्ठ पर, सूखे हुए गुलाब।
जीवन अपना हो गया, सचमुच खुली किताब॥

मानव के ऐश्वर्य का, चुका न पाये मोल।
भूल गए खग वृन्द सब, कलरव और किलोल॥



-प्रवीण श्रीवास्तव 'प्रसून'
ग्रामः सनगाँव, पोस्टः बहरामपुर
जिलाः फतेहपुर-212622 (उ.प्र.)
ई-मेल:praveenkumar94@rediffmail-com

वैसे ही ढलते गए, जैसा मिलता फ्रेम।
लवलेटर से आ टिका, मोबाइल पर प्रेम।

घाव पुराने भूलकर, फिर दे देती वोट।
जनता भोली इस तरह, फिर-फिर खाती चोट॥

सारे रस नीरस हुए, रस भाए शृंगार।
प्रेमगीत मन गा रहा, जब से नैना चार॥

राजनीति के खेल में, नारी का अपमान।
अपशब्दों ने फिर यहाँ, मार लिया मैदान॥

तू मुझको दो-चार कह, मैं तुझको दो-चार।
रहें मीडिया में बनें, फ्री में हुआ प्रचार॥



-डॉ. मंजु गुप्ता
19,द्वारका, प्लॉट नं.31,सेक्टर-9ए,
वाशी,नवी मुंबई-400703
ई-मेल: writermanju@gmail-com

धरती अंबर हो गए, देखो! लालमलाल।
मदहोशी के रंग ने, कैसा किया कमाल॥

होली रंगों से सजी, भर पिचकारी धार।
हर्षल रंगों में घुला, जन मानस का प्यार॥

प्रभु ने रंगों से लिखा, राधा जी को पत्र।
कान्हामय फागुन हुआ, यत्र तत्र सर्वत्र॥

लगन लिखाने आ गया, फाग माह दिल द्वार।
लिए मुद्रिका हाथ में, रीति रस्म तैयार॥

मुमताजी अंदाज में, छलकायें हैं रंग।
प्रेम रंग में भीग के, बौराये सब अंग॥



-रमेश मिश्र 'आनंद'
1420, हनुमंत विहार,
नौबस्ता,कानपुर-209021
मो.9415404461

ऋतु बसंत की आ गई, खिलने लगे गुलाब।
बौराया मन देखता, मीठे-मीठे ख्वाब॥

कर का मोती खो दिया, अब क्यों खड़ा उदास।
पनघट पर बैठे रहे, फिर भी बुझी न प्यास॥

शब्द-शब्द में है छुपा, भावनात्मक अर्थ।
संकल्पों की साधना, कभी न जाती व्यर्थ॥

गौरैया के परों को, नोच रहा है बाज।
शायद फिर से हो गया, दुर्योधन युवराज॥

डूबूँ या उड़ती रहूँ, सोच रही है चील।
अम्बर में आनन्द है, नीचे गहरी झील॥



-राजेन्द्र यादव 'यथार्थ'
रानी कॉलोनी, अबूनगर,
फतेहपुर (उ.प्र.)
मो. 9919952333

बदली कृति की भूमिका, बदला कृति का काम।
बदले कृति के रूप से, वक्त हुआ बदनाम॥

मंदिर मस्जिद हर जगह, निर्धन खाता मार।
छल प्रपंच के दाँव से, प्रतिदिन जाता हार॥

(इ)स्तुति है धनवान की, अभिकर्ता धनवान।
अन्धे आँसू कर रहे, दोनों का गुणगान॥

दुनिया-भर में प्रेम की, अजब निशानी ताज।
चाहत के व्यापार में, ठगी गई मुमताज॥

खुशियों की विकृत हँसी, राग-द्वेष का भोग।
बिना तथ्य के कथ्य को, बाँच रहे हैं लोग॥



-डॉ. विष्णु शास्त्री 'सरल'
सिद्धायन, भैरवां,
चंपावत-262523 (उत्तराखंड)
मो. 9411347934

हवा प्रदूषित हो गई, पानी रहा न शुद्ध।
शोर चतुर्दिक हो रहा, प्रकृति हुई है क्रुद्ध॥

मधुऋतु में भी अब नहीं, गाती कोयल गीत।
नष्ट हुए हैं घोंसले, अतः विहग भयभीत॥

भोगवाद की बाढ़ में, नहीं प्रकृति से प्यार।
आए दिन बढ़ने लगा, उस पर अत्याचार॥

आएगा जब सामने, इसका दुष्परिणाम।
कर पाएगी बुद्धि तब, नहीं किसी की काम॥

स्वाभाविक उल्लास को, छीन रहा विज्ञान।
दें अपने परिवेश पर, आज सभी हम ध्यान॥



-श्लेष चंद्राकर
खैरा पाड़ा, गुडः पारा, वार्ड न.27,
महासमुंद-493445(छ.ग.)
ई-मेल: shleshshlesh@gmail-com

विपदाओं के मेघ जब, ढँक लें मन-आकाश।
धीरज रखना तुम सखे! होना नहीं हताश॥

क्यों जीवन में दीन के, आता नहीं बसंत।
ये दुनिया देती उसे, पीड़ा यहाँ अनंत॥

छुड़वा सकता है नहीं, गिरवी पड़ा मकान।
कितनी ही तकलीफ सह, जीता यहाँ किसान॥

कितना सर पर कर्ज है, क्योंकर पड़ा निढाल।
पूछ रहा कोई नहीं, आज कृषक का हाल॥

नियमों की धज्जी उड़ा, आँख दिखाते यार।
नेताओं के सामने, बेबस हर किरदार॥



-डॉ. शील कौशिक
मेजर हाउस-17, हुडा सेक्टर-20,
पार्ट-1, सिरसा-125056 (हरियाणा)
ई-मेल : sheelshakti80@gmail-com

मौसम की ले पत्रिका, घूमें मस्त बसंत।
प्रेम आज सौंपूँ उसे, जो मिल जाये कंत॥

तुझसे-मुझसे कह गई, हवा बसंती बात।
मधुऋतु के सँग आ रही, फूलों की बारात॥

हुलस-हुलस कर कह रही, गेहूँ की हर बाल।
सखी सयानी हो चली, कब पहुंचूँ ससुराल॥

रिमझिम बूँदें मेह की, लगतीं माँ का प्यार।
बारिश मूसलधार तो, लगे पिता की मार॥

माता के हर झूठ पर, आता मुझको प्यार।
भूखी रहकर भी कहे, पेट भरा सुकुमार।।



-संत कुमार बाजपेई 'संत'
भारतभूषण कॉलोनी,
गोला गोकर्णनाथ, लखीमपुर,
खीरी-262802(उ.प्र.)
मो: 7705831833

कर्तव्यों से मोड़ मुख, जो माँगे अधिकार।
धिक-धिक ऐसे मूढ़ को, 'संत' कहें सौ बार॥

आज न मिलती नौकरी, भटक रहे हैं लोग।
बेकारी का बढ़ रहा, बड़ा भयंकर रोग॥

काँटों में जब तक रहा, रक्षित रहा, गुलाब।
आ लोगों के हाथ में, हालत हुई खराब॥

काया में जब तक रहे, शाश्वत चेतन तत्व।
तब तक संबंधी सभी, दिखलाते अपनत्व ॥

पर पीड़ा समझे नहीं, पत्थर दिल इंसान।
आयें समझाने उसे, खुद चाहे भगवान॥



-सुबोध श्रीवास्तव
'मॉडर्न विला' 10/518,
खलासी लाइन कानपुर-2080001
ई-मेल: subodhsrivastav85@yahoo-in

बापू तेरे देश की, है कैसी तकदीर।
आजादी तो मिल गई, वही रही तस्वीर॥

मंचों पर सजने लगे, कविता के बाजार।
कविता से होने लगा, कवियों का व्यापार॥

निर्मल गंगा के लिए, चले खूब अभियान।
गंगा मैली ही रही, जारी एक्शन-प्लान॥

खाली जेबें घूमतीं, बे-रौनक बाजार।
महंगाई की मार से, सिमट गए त्योहार॥

चाहे ये सरकार हो, चाहे वो सरकार।
लोकतन्त्र में दोस्तो, जनता है लाचार॥



-सोनिया वर्मा
एमआईजी-528, वीरसावरकर नगर,
हीरापुर, रायपुर-492099(छ.ग.)
ई-मेल : vermasonia783@gmail-com

नारी श्रद्धारूपिणी, नारी है विश्वास।
गौरवशाली क्यों नहीं, फिर इसका इतिहास॥

बिलख-बिलख रोये कृषक, कैसे करें निबाह।
बेमौसम बरसात से, फसलें हुईं तबाह॥

जब बेटी की चीख ने, दिया पिता को तोड़।
चला न्याय के द्वार पर, प्राण पखेरू छोड़॥

क्यों पीतल की चाह में, भटक रहा नादान।
घर में ही मौजूद है, जब सोने की खान॥

मिट्टी पानी से कहे, तोड़ो मत विश्वास।
चलो साथ मिलकर रचें, एक नया इतिहास॥



-ज्ञानप्रकाश 'पीयूष'
1/258,मस्जिदवाली गली,तेलियान मोहल्ला,
नजदीक सदर बाजार, सिरसा-125055(हरि.)
ई-मेल : gppeeyush@gmail.com

उज्ज्वल भारत देश है, पावन इसका नीर।
हरती सबकी पीर है, शीतल मंद समीर॥

नर के उत्तम कर्म से, वसुधा स्वर्ग समान।
उसके साहस शौर्य से, जीवन है गतिमान॥

मिट्टी अपने देश की, देती है संदेश।
रक्षा इसकी सब करें, रहें किसी भी वेश॥

जीवन खुली किताब है, हर पन्ने पर प्यार।
मन के तार सँवार लो, बजने लगे सितार॥

पावन मिट्टी राष्ट्र की, कण-कण में अनुराग।
गंगा, यमुना, नर्मदा, खेलें मिलकर फाग॥



-अंसार कम्बरी
'जफर मंजिल' 11/116,ग्वालटोली,
कानपुर-208001
ई-मेल: ansarqumbari@gmail-com

रातों को दिन कह रहा, दिन को कहता रात।
जितना ऊँचा आदमी, उतनी नीची बात।।

सूरज बोला चाँद से, कभी किया है गौर।
तेरा जलना और है, मेरा जलना और।।

वही सियासी खेल है, वही पुरानी चाल।
मजदूरों का है नहीं, कोई पुरसाहाल।।

पानी है इंसान के, जीवन का आधार।
धरती पर बरसात बिन, आती नहीं बहार।।

भाषा से होने लगा, अब ऐसा व्यवहार।
अंग्रेजी में कर रहे, सब हिन्दी से प्यार।।

कलयुग में तो हो गए, उल्टे सारे माप।
झूठ बोलना पुण्य है, सत्य बोलना पाप।।

दुनिया में जिंदा रहा, सदा वही इंसान।
सच के ऊपर जो यहाँ, होता है कुर्बान।।

ये मत सोचो 'कम्बरी', क्या होगा परिणाम।
कर्म हमारा धर्म है, देना उसका काम।।

सत्य खोजने के लिए, दुनिया नहीं टटोल।
तन की आँखें बंद कर, मन की आँखें खोल।।

नियति सत्य की जीत है, और झूठ की हार।
यही रहेगी 'कम्बरी', जब तक है संसार।।



-डॉ. अनुज नागेंद्र
ग्रामः उमापुर, पो.: लालगंज
जनपदः प्रतापगढ़ (उ.प्र.)
मो.:9415345000

दुख बाधाएँ देखकर, हों मत कभी हताश।
साहस से झुकता यहाँ, धरती पर आकाश।।

दुख तो एक हकीम है, करे कुशल उपचार।
फोड़ा–फुन्सी चीर कर, खोले सुख का द्वार।।

किसे सुनाएँ दर्द हम, किसे दिखाएँ रोग।
यहाँ जले पर नमक ही, मिलें छिड़कते लोग।।

हमने समझा बस यही, जीवन का निष्कर्ष।
दुख देने से दुख मिले, सुख देने से हर्ष।।

कोलाहल चारो तरफ, चारो तरफ गुहार।
कदम-कदम पर है मची, निर्मम चीख-पुकार।।

हया शर्म सब खो गायी, ममता हुई अनाथ।
मानवता खुद बिक गई, दानवता के हाथ।।

खुद का खुद दुश्मन बना, किया दिलों में भेद।
बैठा जिस भी नाव में, किया मनुज ने छेद।।

कट कर रोया द्वार पर, फूट-फूटकर नीम।
इस घर भी अब आएंगे, डॉक्टर, वैद्य, हकीम।।

हँसकर शर्तें मान लीं, किया वहीं अनुबंध।
मिली जहाँ इस भूख को, रोटी वाली गंध।।

हर नदिया का जल पिया, बुझी न फिर भी प्यास।
अपने मन के कूप का, कर न सके आभास।।



- डॉ. अमलदार नीहार
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
श्री मुरलीमनोहर टाउन स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, बलिया-277001

भूखे की रोटी गयी, कामगार का काम।
मरना मुश्किल हो गया, जीना हुआ हराम।।

सारा रक्त निचोड़ ले, ऐसा जालिम वक्त।
महगाई से तंगदिल, जीवन हुआ अशक्त।।

अवसर पूरा मिल गया, लूटपाट की छूट।
कृत्रिम सारी आपदा, समझो भाषा कूट।।

बुद्धि बावली हो गई, जन-जन-जन में फूट।
फिर आपस में जूझिए, पियो लहू के घूँट।।

यूँ पाखंड फरेब रच, एक करेगा ऐश।
बाकी वंचित ज्ञान से, जैसे पागुर भैंस।।

दुनिया देखे है इन्हें, बाँधे दृष्टि अटूट।
जो हाकिम हुक्काम हैं, आँख गई है फूट।।

मद में अंधे हो गए, प्रभुता पद-आक्रांत।
दिल पर और दिमाग पर, कुहरा, कीचड़, ध्वान्त।।

भारत का भूगोल क्या, पता नहीं इतिहास।
पता नहीं कानून का, कहलाते हैं खास।।

यमुना काली हो गई, गंगा क्षीण-मलीन।
कंपनियों की डूब में, डूबे ख्वाब हसीन।।

बहुत कथाएँ शेष हैं, तहखाने निश्शेष।
एक-एक कर खोलिए, जाहिर भेद विशेष।।



-डॉ. अरुण तिवारी 'गोपाल'
117/69,तुलसीनगर, काकादेव
कानपुर-208025
मो. 7784961687

घावों डूबी देह ले, अधर हँसें किलकार ।
मन वंशी में तब जगे, गीतों का संसार।।

बगुला रोके साँस है,रुकी मीन की साँस ।
प्रान-पेट के बीच में, फँसती ऐसी फाँस।।

मौसम पाकर ठूँठ का, हरा हुआ विश्वास।
झरने फूटें इसलिए, थी पत्थर में प्यास।।

बरगद की जड़ जड़ हुई, ताल हुए बेताल।
हवा पागलों-सी फिरे, देख गाँव के हाल।।

बूढ़ा आँगन खिल उठे, घर न रहे बीमार।
खुशियों के फल-फूल ये, बच्चे हैं त्योहार।।

जो रिश्ता जितना सगा, दागे उतने दाग।
मरने पर भी पुत्र ही, देता मुँह में आग।।

आँगन तक दलदल हुआ, कमरों तक है कीच।
जब चूल्हे से बर्फ-सी, दुल्हन गई उलीच।।

साथ फूल के रो पड़ी, कैदी गंध उदास।
बेवश के प्रेमी जियें, रस भीगा सन्यास।।

कोयल की जिद है सभी, कूकें वैसी कूक।
खुशियाँ-गम सबके अलग, चकवी भरती हूक।।

रात गई तो दिन उगे, कुदरत का कानून।
पर, मजूर अब भी वहीं, भूखा दोनों जून।।



-अवनीश त्रिपाठी
गरयें, सुल्तानपुर -227304
(उ.प्र.)
मो : 9451554243

जितना हिस्से में मिला, दुख है उसको भोग।
व्यथा सुनाने का नहीं, अवसर देते लोग।।

दाँव लगाती धड़कनें, कुछ संवेदनहीन।
निरपराध फाँसी चढ़ा, सुख होकर गमगीन।।

छूने से भी कर रहे, अब तक जो परहेज।
सम्बन्धों के वे हुए, घोषित दस्तावेज।।

चाकू लेकर छद्म की, करता नित्य फसाद।
शहर स्वयं से कर रहा, वाद और प्रतिवाद।।

सन्नाटे की पीठ पर, ये कैसे हालात।
रात दे रही आजकल, चीख भरी सौगात।।

उड़ो पंछियो खूब तुम, खोल पंख बिंदास।
आना तो है लौटकर, फिर टहनी के पास।।

वैचारिक परिवेश का, जख्मी हर अहसास।
मौलिकता ने पाल ली, जब से नई खटास।।

दरवाजे पर मोम का, खड़ा हुआ दरबान।
आग लगाने के लिए, हाजिर सब सामान।।

लोकतन्त्र को मिल चुका, यह कैसा अभिशाप।
दिन-प्रतिदिन बदतर हुई, मानवता की माप।।

सड़कों पर कटती रही, भूखी-प्यासी रात।
रहा मीडिया बाँचता, चन्दन की सौगात।।



-अशोक अंजुम
स्ट्रीट-2,चन्द्रहार कॉलोनी
(नगला डालचंद) क्वारसी बायपास
अलीगढ़-202002
ई-मेल : ashokanjumaligarh@gmail-com

बेटी क्या कर पायगा, तेरा क्षीण नकाब।
सभी रखें बाजार में, आँखों में तेजाब।।

रह-रहकर नित जहन में, उभरे एक सवाल।
रख दें कहीं न रहनुमा, गिरवी रोटी-दाल ।।

जीवन की ये उलझनें, जैसे मकड़ी-जाल।
वक्त कसाई-सा हुआ, फिर-फिर खींचे खाल।।

महँगाई ने थामकर, हाथों में बंदूक।
दुखिया से खुलवा लिया, पुरखों का सन्दूक।।

राजन पर उत्तर नहीं, हथप्रभ है बेताल।
कहाँ शहर से गुम हुए, सारे पोखर-ताल।।

एक तरफ बाजार में, आसमान पर रेट।
जो अनाज पैदा करे, सोये आधा पेट।।

कोर्ट-कचहरी में गये, खेत और खलिहान।
खींच रहा है शहर में, रिक्शा आज किसान।।

मिट्टी सोना हो गई, पाकर तेरा स्वेद।
तुझको मिट्टी ही मिली, हे किसान! है खेद।।

सुख ने दुख का अंततः, मान लिया आभार।
मुझे पूछता कौन यदि, तू ना होता यार।।

बेबस सभी प्रतीक हैं, हतप्रभ सब उपमान।
बाजारों की ताल पर, नाच रहा इंसान।।



-अशोक मिश्रा
'जफर मंजिल' 117/के-46,
सेक्टर-1,आरएस पुरम,
काकादेव,कानपुर-208025
मो. 9616000085

जिसे न बाँचा जा सका, लाख जतन के बाद।
वो किताब है जिंदगी, हुई न अब तक याद।।

छोटी-सी इस उम्र में, कुछ तो करो कमाल।
रहे तुम्हारे बाद भी, जिंदा यहाँ मिसाल।।

निर्णय से पहले करें, चिंतन-मनन-विचार।
फिर मछली की आँख पर, करें तीर से वार।।

छोटी-सी है जिंदगी, बड़ी-बड़ी है आस।
कितनी नदियां पी गए, बुझी न अब तक प्यास।।

मेले के बस चार दिन, फिर सूना पंडाल।
यही धरा का सत्य है, सब है मायाजाल।।

छोटी-सी है जिंदगी, बड़े-बड़े हैं काम।
मीलों लंबे रास्ते, ढलने को है शाम।।

नफरत से नफरत बढ़े, बढ़े प्यार से प्यार।
इतनी छोटी बात तू, नहीं समझता यार।।

यही रहा है आज तक, राहों का इतिहास।
चलते रहते तुम अगर, मंजिल होती पास।।

जीत-हार के बीच में, अंतर है बस एक।
समझेगा बस वो इसे, जिसका जगा विवेक।।

दिल के रिश्तों में कभी, करो न तर्क-वितर्क।
लगी जरा-सी ठेस तो, आ जाएगा फर्क।।



-ओ३म शरण आर्य 'चंचल'
काव्य निकेतन, बेनिविहार-, पीरूमदारा
रामनगर, नैनीताल-244715 (उत्तराखंड)
मो.- 9411431348

किस्मत! तेरी आजकल, चर्चा है हर ठौर।
लिखता कोई और है, पढ़ता कोई और।।

दिखलाया है दंभ ने, जब से अपना रंग।
मानवता जर्जर मिली, सहनशीलता भंग।।

लगा हमारे गाँव को, अब यह कैसा रोग।
पीड़ा देख पड़ोस की, हर्षित होते लोग।।

करूँ याद किसको यहाँ, जाऊँ किसको भूल।
जब जिसको अवसर मिला, गया बिछाकर शूल।।

टूटा रिश्ता देख कर, क्यों हो रहे उदास।
रिश्ते तो चलते वहाँ, जहाँ अटल विश्वास।।

मित्रों के संसार में, अब यह कैसा दौर।
कहने में कुछ और हैं, करने में कुछ और।।

सारहीन होंगे सभी, मानवता के लेख।
कभी किसी से एक दिन, भीख माँगकर देख।।

विकसित नगरों से मिला, जब से मेरा गाँव।
अनहोनी के रात-दिन, थिरक रहे हैं पाँव॥

खड़ी हो गई है जहाँ, हिम्मत सीना तान।
नतमस्तक होकर गए, बड़े-बड़े तूफान।।

पीर छिपी बैठी हिये, आज हँसी की ओट।
लोग लिए पत्थर खड़े, किसे दिखाऊँ चोट।।



-ओंकार गुलशन
हरि नगर, मेरठ शहर
(उ.प्र.)
मो.-9997355311

अबके सावन में हुई, कुछ ऐसी बरसात।
बादल बरसे दो घड़ी, नैना सारी रात॥

मौसम क्यों लाया नहीं, बरसा का संदेश।
अबके बादल जा बसे, क्या सौतन के देश॥

इस बैरन बरसात में, बरसा कैसा मेह।
दहक-दहक कर रह गई, कंचन जैसी देह॥

वो पीपल की दोपहर, वो मीठे अनुबंध।
क्या तुमको भी याद है, अब तक वो सौगंध॥

मेरे जीवन में रहा, ये कैसा संयोग।
मैला मन लेकर मिले, उजले-उजले लोग॥

इस दुनिया में प्रीत का, देखा अजब हिसाब।
उसको ही काँटे मिले, जिसने चुने गुलाब॥

जब जीवन की धूप में, झुलसे मेरे पाँव।
याद मुझे आई बहुत, उन अलकों की छाँव॥

तुम क्या रूठे दे दिया, मौसम ने सन्यास।
नागफनी लगने लगी, मखमल जैसी घास॥

पीले करने के लिए, बिटिया के दो हाथ।
सारा पीला पड़ गया, है बाबुल का गात॥

हम दोनों को ले उड़ा, समय लगाकर पंख।
नदी किनारे रह गए, केवल सीपी शंख॥



-डॉ. ओमप्रकाश सिंह
259, शांति निकेतन,साकेत नगर,
लालगंज, रायबरेली-229206
मो.-8400026555

मन ही मन करती घृणा, हिंसा से अनुबंध।
लपटें उठती दूर तक, सुलग रहे संबंध॥

स्नेहिल पथ पर हैं बिछे, षड्यंत्रों के जाल।
महफिल में फुफकारते, बड़े विषैले व्याल॥

क्यों न सत्य को खोज कर, झूठ करें बेपर्द।
सुखमय जीवन जी सकें, मन का खोले दर्द॥

रेशे - रेशे बाँटते, हवा, चाँदनी, धूप।
फिर मन क्यों यह हो गया, गहरा अंधा कूप॥

आँगन की अंतर्व्यथा, सुने पड़ोसी कान।
शब्द-शब्द कटुता भरे, चुभते जैसे बान॥

बहसों पर बहसें करें, मचे बिकाऊ शोर।
प्रश्न करें लड़ने लगें, एक पक्ष की ओर॥

गुलदस्ते मुस्कान के, भरे हुए विस्फोट।
भीतर-भीतर टूटते, बाहर दिखे न चोट॥

हाथ सत्य के हथकड़ी, खड़ा न्याय दरबार।
झूठ भ्रमित कर हँस रहा, कलियुग की जयकार॥

युद्ध-युद्ध के स्वर उठें, जल,थल,नभ में आग।
बारूदी धरती जले, मानवता तू जाग॥

कलियुग में रावण खड़ा, राम मिलाएँ हाथ।
लंका का स्वागत करे, चूम अयोध्या माथ॥



-डॉ. ऋषिपाल धीमान 'ऋषि'
66, श्रीनाथ बंग्लोज, चाँदखेड़ा,
अहमदाबाद-382424(गुजरात)
ई-मेल. Dhiman_rp2000@yahoo-co-in

खेलें मिलकर आइये, दीपक-दीपक खेल।
आप बनें बाती अगर, मैं बन जाऊँ तेल।।

बन्द नयन से स्वयं को, जब देखा इक बार।
सिमटा मेरे नैन में, आकाशी विस्तार।।

अलसी नीली पड़ गई, सुन सरसों की बात।
ईंटों के जंगल सखी, उगते रातों-रात।।

जूते को इल्जाम मैं, देता रहा फिजूल।
देखा तो जाना, लगा, एड़ी में था शूल।।

अद्भुत जीवन-यात्रा, मंजिल का था 'क्रेज'
मंजिल पीछे रह गई, दौड़ा इतनी तेज।।

बाहर से इंसान हो, चाहे चकनाचूर।
लेकिन होना चाहिए, अंदर से भरपूर।।

चार न हो जाएँ कहीं, इसके ये दो छोर।
इतनी भी मत खींचिए, सम्बन्धों की डोर।।

कुनबे ने समझे नहीं, स्वार्थ भरे संकेत।
इंच-इंच में बंट गए, सब पुस्तैनी खेत।।

जाति-धर्म के काफिले धूल-भरा परिवेश।
वोटों की इस दौड़ में, पीछे छूटा देश।।

शिल्प भाव लय छंद का,दिखता तनिक न रंग।
कविता के आँगन मचा, शब्दों का हुड़दंग।।



-डॉ.कमलेश द्विवेदी
119/427, दर्शनपुरवा
कानपुर-208012
ई-मेल-drkamlesh-dwivedi@gmail-com

उसे तृप्ति का किस तरह, हो सकता अहसास।
जिसे बिन्दु-सा जल मिला,और सिंधु-सी प्यास॥

तितली,भौंरे,फूल सब, उपवन के आनंद।
लगे विधाता ने रचा, कितना सुंदर छंद॥

कुछ फूलों के साथ हैं, कुछ शूलों के साथ।
पर,सबके सब चाहते, खुशबू आए हाथ॥

करते-करते बात जब, चुक जाते हैं तर्क।
बुद्धिमान हो मौन तब, करता मूर्ख कुतर्क॥

तितली का गुल से हुआ, कुछ ऐसा संवाद।
सारा गुलशन हो गया, खुशबू से आबाद॥

पंछी को दो प्यार से, उड़ने को आकाश।
ले आएगा प्यार ही, उसे तुम्हारे पास॥

तू अपने दिल में जगा, सागर जैसी प्यास।
चलकर आएगी नदी, खुद ही तेरे पास॥

जब दिमाग की जगह दिल, दिल की जगह दिमाग।
कोई करे प्रयोग तो, खुशियाँ जाती भाग॥

कब से प्यासी थी धरा, रात हुई बरसात।
प्यासे अधरों को मिली, अधरों की सौगात॥

मेरे ऊपर आपका, है आशीष अशेष।
जिसने इस 'कम''लेश'को, बना दिया कमलेश॥



-किशोर कुमार कौशल
नव दिव्या अपार्टमेंट,फ्लैट न.202,
सेक्टर-64, मोहना रोड,
बल्लभगढ़ (फरीदाबाद)-121004
मो. 9899831002

सबसे ऊँचा द्वार है, मानवता का द्वार।
सबसे अच्छा धर्म है, तेरा-मेरा प्यार॥

कमर झुकी, आँखें थकीं, डटा रहा ईमान।
चाटुकार सब ले गया, पद, पैसा, सम्मान॥

आब नहीं, आदर नहीं, ना कुछ नीति विचार।
अब पैसे की बाढ़ में, बहा सकल संसार॥

निर्धन का जीवन सदा, कष्टों से भरपूर।
सुविधा के साधन सभी, रहते उससे दूर॥

कोयल कूकी डाल पर, भूली पीर तमाम।
पीले पत्ते छोडकर, फिर बौराया आम॥

डगमग-डगमग जब धरे, बिटिया ने पग चार।
मेरे आँगन लग गया, खुशियों का अंबार॥

घर-बाहर सब एक है, मन को रखिए शुद्ध।
घर में रहो कबीर से, बाहर जैसे बुद्ध॥

अपने घर जैसा रहा, वह पड़ोस का द्वार।
जाने कब से बन गया, वह भी इक दीवार॥

हुआ आधुनिक दौड़ में, यह कैसा उत्कर्ष।
मौज मनाए इंडिया , तरसे भारतवर्ष॥

वोटर बिके हजार में, मंत्री बिके करोड़।
और मीडिया में लगी, अब बिकने की होड़।।



-कुँवर उदयसिंह 'अनुज'
ग्राम-पोस्ट- धरगाँव (मंडलेश्वर)
जिला- खरगौन-451221 (मध्य प्रदेश)
ई-मेल-uday-anuj2012@gmail-com

भीतर बारिश हो गई, तुम्हें किया जब याद।
कितने मौसम पीठ पर, मन चलता है लाद॥

मौसम कोई भी रहे, सावन या मधुमास।
कब बुझ पायी है भला, मन-मरुथल की प्यास॥

इन्द्रधनुष जब देखती, मोर-पाँख सी सोच।
छूने की हसरत मगर, मुट्ठी में संकोच॥

बही हृदय मे नर्मदा, कभी न सूखे पाट।
एक शिवाला तू बना, मन-रेवा के घाट॥

बिन बतियाये ही नयन, कह देते हैं बात।
और जुबां वाचाल बन, खा जाती है मात॥

छत की ओढ़े ओढनी, प्रीत करे जब घात।
तब पलकों की ओट से, बरस पड़े बरसात।।

जैसे झरता मेह है, जैसे हरसिंगार।
ऐसे क्यों झरता नहीं, यहाँ दिलों में प्यार॥

अपने हाथों से रँगे, हमने जो नाखून।
घाव उन्हीं से हो गए, अब रिसता है खून॥

बसते-बसते रह गया, मन का गाँव हुजूर।
खड़ा हुआ जब दरमियाँ, बन दीवार गुरूर॥

चार पहर का दिन गया, रात पहर भी चार।
उनसे आँखें चार कर, हम डूबे मझधार॥



-के. पी. अनमोल
अनमोल-प्रतीक्षा 321/4,सोलानीपुरम,
रुड़की-247667 (उत्तराखण्ड)
ई-मेल- kpanmol-rke15@gmail-com

बेटे ने दहलीज के, बाहर रक्खे पाँव।
सूना-सूना हो गया, माँ के मन का गाँव॥

फूल खिले गुलदान में, उगी लॉन में दूब।
कम करके विस्तार को, हुई तरक्की खूब॥

यार खुदा के वास्ते, यह भी कर इक रोज।
बेटे की सब खूबियाँ, बेटी में भी खोज॥

आ जानी है एक दिन, ऐसी भी तकनीक।
जिससे मन की बात भी, हो जाएगी लीक॥

वृद्ध आश्रम को चले, सूने हैं दालान।
धूप, चाय, अखबार की, सूख रही है जान॥

सही-गलत का जब तुम्हें , हो जाएगा बोध।
कर लोगे अन्याय का, अपने आप विरोध॥

दिन-भर चुगली के लिए, मिल जाये सामान।
दीवारों पर इसलिए, धरे गए हैं कान॥

कहीं समंदर प्रेम का, कहीं घृणा का कूप।
अलग-अलग सबके लिए, है जीवन का रूप॥

मिट्टी से ही पुल बने, मिट्टी से दीवार।
जैसी तेरी चाह हो, दे वैसा आकार॥

करता रहता है सदा, मन तेरा ही जाप।
कान लगाकर सुन कभी, साँसों की पदचाप॥



-डॉ. कृष्णकुमार 'नाज'
9/3, लक्ष्मी विहार, हिमगिरि कॉलोनी
कांठ रोड, मुरादाबाद-244001
ई-मेलः kknaaz1@gmail-com

आपस में पैदा हुए, इतने वाद-विवाद।
हम-तुम दोनों प्रेम के, भूल गए संवाद।।

कुछ अपनी, कुछ आपकी, कुछ दुनिया की बात।
कहते-सुनते कट गए, जीवन के दिन-रात।।

तुममें था जैसे निहित, जीवन का सब सार।
तुम क्या बिछुड़े, हो गया, जीना ही दुश्वार।।

सपने हाथों में लिए, आए तीर-कमान।
प्रातः देखा तो मिलीं, आँखें लहूलुहान।।

धुँधला-धुँधला दिख रहा, यत्र-तत्र-सर्वत्र।
भीगीं आँखें किस तरह, पढ़ें तुम्हारा पत्र।।

बैठीं हैं घेरे हुए, यादें मन का घाव।
जैसे हो चौपाल में, जलता हुआ अलाव।।

गगन चूमते हैं जहाँ, महलों के प्राचीर।
खाली हाथों लौटते, देखे वहाँ फकीर।।

चहल-पहल है इस तरह, जैसे हो त्योहार।
सजा हुआ है दूर तक, यादों का संसार।।

साथ चला था आपके, मन में लिए उमंग।
बिछड़ा तो ऐसे हुआ, जैसे कटी पतंग।।

फूट-फूट रोई बहुत, खुशी हृदय के द्वार।
हमने जब-जब भी किया, आँसू का सत्कार।।



-कृष्ण भारतीय
बेस्टेक पार्कव्यू रेजीडेंसी
टी-2/503, पालम विहार, सेक्टर-3,
गुरुग्राम-122017 (हरियाणा)
ई-मेल- kbhasin15@gmail-com

गुलमोहर की आड़ में, बैठी गोरी धूप।
सुर्ख चूनरी में हँसे, उजला-उजला रूप॥

भोर हुई जब भी उठे, खिलती दीखी भोर।
दर्पण-सी हँसती हवा, गूँगा दीखा शोर॥

चिंतन के मतभेद हों, मन के हों अनुबंध।
उन मित्रों से उम्र-भर, मधुर रहें संबंध॥

चीखें सब गूंगी हुईं, शहर हुए वीरान।
घर की जेलों में सभी, कैद हुए इंसान॥

साफ प्रदूषित-सी हवा, धुला-धुला आकाश।
अरसे से कुदरत यही, दिन थी रही तलाश॥

सूरज बूढ़ा डाकिया, शहर-शहर अनुरूप।
रोज बाँटता भोर में, घर-घर चिट्ठी-धूप॥

सच से सबकी दुश्मनी, और झूठ से मेल।
लुका छुपी सबका यही, खूब चल रहा खेल॥

प्रश्न एक कर ही गया, अक्सर सबको मौन।
अपनों में किसको कहें, सबसे बेहतर कौन॥

बेटी पावन ग्रंथ-सी, बेटी है (इ)श्लोक।
उसी लाड़ली के लिए, नर्क हुआ यह लोक॥

चील फिरें आकाश में, जमें पेड़ पर बाज।
चिड़िया काँपे धरा पर, है बिल्ली का राज॥



-गंगा प्रसाद अरुण
21-बी,रोड नं.1, जोन-4,बिरसानगर
जमशेदपुर-831019 (झारखंड)
ई-मेलः rajeshbhojpuriya@gmail-com

आँखें नीली झील-सी, मन-सागर गंभीर।
सुबह दिलासा दे गई, संझा मरती पीर।।

मन चंचल तो हो गये, मन-मन भर के पाँव।
मनरंजन होता कहाँ, मनभंजन के गाँव।।

साँस हिंडोले पर चढ़ी, उफने आस-उसांस।
तन रवि-पर्व एकादशी, मन निर्जल उपवास।।

रक्त जवा-से अधर से, झरते टेसू-फूल।
वन में कोकिल काकली, आँगन खिला बबूल।।

फिर नयनों के ताल में, मधु सुधियों की नाव।
मलयानिल सहला गया, कुछ बिसरे-से घाव।।

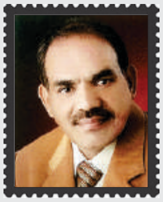
तन चकवा इस पार हो, मन चकई उस पार।
रातें बेचैनी-भरीं, कैसे हो अभिसार।।

भाव अबीर–गुलाल-से, आकांक्षा के द्वार।
सन्नाटों में खल रहे, बोझिल लोकाचार।।

तन पर तो सरसों खिली, मन पाटल भरपूर।
आँखें चाहें, कब खिले, चुटकी-भर सिंदूर।।

सतरंगी-सी भावना, मन-पाँखी बेचैन।
द्वार-देहरी पर सजे, गुमसुम रहते नैन।।

रैन-दिवस पसरे जहाँ, नयनों के अभिषेक।
कैसे ढह जाये नहीं, कच्चे पुल-सी टेक।।



-डॉ. गोपाल राजगोपाल
225-सरदारपुरा, पेट्रोल पंप के पीछे,
उदयपुर -313001 (राज.)
ई-मेल- grajgoparva@gmail-com

यह तन जैसे रूह का, सरकारी आवास।
होता नहीं सराय का, कभी मुसाफिर खास॥

तूने जंगल काटकर, काटी जीवन डोर।
'वेंटीलेटर' देख के, मत हो भावविभोर॥

मुझसे ढेर विरासतें, कैसे संभलें तात।
नन्दन वन के सामने, मैं इक टूटा पात॥

कुल पालन की तर्ज पर, जग-पालन का काम।
मिला पिता से ईश को, परमपिता का नाम॥

तेरे-मेरे बीच की, ओझल अब 'ओजोन'।
कुत्सित मनोविकार के,विकिरण रोके कौन॥

कर लें ऊंची एड़ियाँ, इस पर भी कुछ गौर।
कद्दावर का कद नहीं, देखा जाता जोर॥

निर्मल कर दे जो सभी, इस जीवन के तंत्र।
प्राणी तेरी आँख में, है मन-शोधक यंत्र॥

मजहब-फिरके-धर्म के, बंधन ढीले छोड़।
तुझको-मुझको 'हम' करे, भाषा उत्तम जोड़॥

उठता है इक हाथ जब, रक्तिम होते गाल।
उठी हाथ की तर्जनी, तन-मन करती लाल॥

बेटा अपने गाँव की, यादें रहा सहेज।
हुए मेड़ के पेड़ से, निर्मित कुर्सी-मेज॥



-गरिमा सक्सेना
म.न.212, ए-ब्लॉक, सेंचुरी सरस
अपार्टमेंट, अनंतपुरा रोड, यलहंका,
बेंगलुरु-560064
ई-मेल.- garimasaÜena1990@gmail-com

नारी संज्ञा सँग जुड़ें, प्रत्यय औ' उपसर्ग।
पर अपने ही अर्थ का, रहा उपेक्षित वर्ग॥

सभी तितलियों ने स्वयं, नोची अपनी पाँख।
जब से जहरीली हुई, उपवन में हर आँख॥

प्यासा आँगन का कुआँ, तुलसी पड़ी उदास।
गाँव छोड़ पहुँची शहर, जब से भोली प्यास॥

'अच्छा है मैं बाँझ हूँ', बोली रोकर बाँझ ।
कचरे में जब भ्रूण की, देखी ढलती साँझ॥

न्याय व्यवस्था देख कर, निकली मन से चीख।
न्याय यहाँ मिलता नहीं, मिलती है तारीख॥

अपराधी पीड़ित मरे,नहीं न्याय को ठौर।
पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला, बस पेशी का दौर॥

ढूँढ रही है हर तरफ, खोया कहाँ विकास।
जब से जुमलों पर किया, जनता ने विश्वास॥

कागज काले कर लिए, हमने कई हजार।
मगर सार्थक क्या लिखा, ये कब किया विचार॥

स्वेद, अश्रुओं से भरा, जनता ने जो ताल।
राजा जी उस ताल में, रहे मछलियाँ पाल॥

जहर,कोख,जीवन,धरम,देह,अंग-व्यापार।
जाने किस-किस चीज को, बेच रहा बाजार॥



-डॉ.गोपाल कृष्ण शर्मा 'मृदुल'
569 क/108/2, स्नेह नगर
आलमबाग,
लखनऊ-226005

महुआ टपके, गुड़ पके, फूले हरसिंगार।
नहीं छिपाये से छिपे, पहला-पहला प्यार।।

जो जिसके मन भा गया, उस पर उमड़े प्यार।
सब जग झुलसे जेठ में, मृदुल हँसे कचनार।।

नहीं सूखती है कभी, मृदुल प्रेम की धार।
जो डूबे इस धार में, वे उतरे उस पार।।

चन्दा का मुँह खिल उठे, देख कलूटी रात।
कौन मृदुल भाये किसे, मनमर्जी की बात।।

थोड़ी-थोड़ी चाँदनी, थोड़ी-थोड़ी धूप।
ठंडक भी दे ताप भी, मृदुल प्रिया का रूप।।

एक कहे दूजा सुने, मृदुल अबोले बोल।
नयनों ने सीखी कहाँ, यह भाषा अनमोल।।

शब्द बिना बोले करें, शस्त्र बिना ही चोट।
नयन बड़े अचरज रचें, ले पलकों की ओट ।।

शशि को पाकर अंक में, मृदुल ताल बेचैन।
फिर-फिर देखें रूप को, खोल सहस्त्रों नैन।।

बोलें सब, बोले बिना, मृदुल छबीले नैन।
आड़े-तिरछे हो धसें, छीने मन का चैन।।

दर्पण के सम्मुख खड़ी, रूप निहार-निहार।
चकित, भ्रमित, मोहित, करें अपनी ही मनुहार।।



-डॉ. घमंडीलाल अग्रवाल
785/8 , अशोक विहार, फेज-1
गुरुग्राम-122006 (हरियाणा)
मो- 9210456666

कई मुखौटे,एक मुख, दुर्लभ है पहचान।
इन्सानों के वेश में, घूम रहे शैतान॥

एक बाप छः बेटियाँ, बदला मुख का तेज।
पेट काट कर जोड़ता, पूरी उम्र दहेज॥

मैली चादर झूठ की, सिंहासन पर झूठ।
गाँव-गाँव हैं वायदे, नगर-नगर में लूट॥

घायल बैठी आस्था, छलनी है विश्वास।
कदम-कदम पर सत्य का, उड़ता है उपहास॥

कहा पेट ने पीठ से, खुल कर बारंबार।
तेरे–मेरे बीच में, रोटी की दीवार॥

मौसम आया उग गई, खेत-खेत में ज्वार।
शायद संभव हो सके, बस्ती का उपचार॥

कत्ल हुआ वो रात को, निकली मुख से चीख।
भोर हुए लेने लगी, सच्चाई फिर सीख॥

चलीं बेटियाँ द्वार से, नैनों भरकर नीर।
एक अकेलापन हुआ, बाबुल की जागीर॥

यश-अपयश जो भी मिले, अपनाई जब पीर।
मीरा ने भी यह कहा, बोले यही कबीर॥

निशिगंधा यह देखकर, हुई शर्म से लाल।
भीड़ उन्हीं के साथ है, जिनके हाथ मशाल॥



-चक्रधर शुक्ल
सिंगल स्टोरी, एलआईजी-1
बर्रा-6, कानपुर-208027
मो.-9455511337

हाँफ रही है फ्लैट में, गौरैया बीमार।
कहाँ बनाए घोंसला,कौन करे उपचार॥

धरा प्रदूषित कर रहे, पालीथीनिक लोग।
जीव-जन्तु व्याकुल बहुत, कष्ट रहे हैं भोग॥

गौरैया गाती नहीं, चूँ चूँ वाले गीत।
मोबाइल में कैद है, अब उसका संगीत॥

पीत वसन पहने मिली, सरसों जंगल-खेत।
अमलतास का मौन व्रत, क्या समझेगी रेत॥

मटर-चना फूले-फले, सरसों गाये गीत।
कानों में रस घोलता, फागुन का संगीत॥

पानी आँखों का मरा, ढीठ हो गए लोग।
पानी पानी था कभी, आज हुआ उद्योग॥

आओ सब मिलकर करें, वृक्षों का सम्मान।
वृक्षों से हमको मिला, जीवन का वरदान॥

जो जितना गुणवान है, है उतना गंभीर।
आँखों में उसके दिखे, क्षमा, दया, शुचि नीर॥

तरह-तरह के लोग हैं, अजब-गजब किरदार।
कुछ मुर्दों को फूँकते, कुछ करते व्यापार॥

पाँच बरस मलकर हमें, आश्वासनी भभूत।
नेताजी ने जोड़ ली, धन-सम्पदा अकूत॥



-डॉ. जगदीश व्योम
बी-12ए/58ए, धवलगिरी
सेक्टर-34,नोएडा-201301
ई-मेल:jagdishvyom@gmail-com

हारिल बैठा खेत में, लकड़ी दाबे पाँव।
ज्यों कोई परदेश में, रखे सहेजे गाँव॥

कविता के बाजार में, घसियारों की भीड़।
शब्द भटकते फिर रहे, भाव हुए बेनीड़॥

बदला-बदला लग रहा, मंचों का व्यवहार।
जब से कवि करने लगे, कविता का व्यापार॥

कविता निर्वासित हुई, कवियों पर प्रतिबंध।
बाँच रहे हैं लोग अब, लूले-लँगड़े छंद॥

बौने कद के लोग हैं, पर्वत–से अभिमान।
जुगनू भी कहने लगे, खुद को ही दिनमान॥

आहत है संवेदना, खंडित है विश्वास।
जाने क्यों होने लगा, संत्रासित वातास॥

पीपल त्रिपिटिक बाँचता, पीपल गाता गीत।
पीपल सबको बाँटता, साँसों का संगीत॥

पीपल जब-जब चुप हुआ, तब-तब पसरा मौन।
बूढ़े पीपल की व्यथा, समझे आखिर कौन॥

बन बुजुर्ग करता रहा, पीपल हमसे प्यार।
खड़ा गाँव के छोर पर, बनकर पहरेदार॥

किसकी बरबादी हुई, कौन हुआ आबाद।
पीपल करता रात-भर, पत्तों से संवाद॥



–जयराम जय

'पर्णिका'11/1,कृष्ण विहार,
आवास विकास, कल्याणपुर,
कानपुर-208017
ई-मेल : jairamjay2011@gmail-com

तानाशाही से रही, कब विकास की आस।
कर्म आपके दे रहे, हैं हमको आभास॥

जिसने तुमको वोट दे, सत्ता दी श्रीमान।
उसको भी सुन लीजिए, देकर थोड़ा ध्यान॥

अपनी ही मत जोतिए, सुनिए सबकी बात।
कदम-कदम पर आपने, दिये सिर्फ आघात ॥

मत ज्यादा इतराइए, कुर्सी पाकर आप।
घड़ा फूटता एक दिन, जब भर जाता पाप॥

लाठी, डंडे, गोलियां, और कँटीले तार।
अपनों से ही आपका, यह कैसा व्यवहार॥

गोले आँसू गैस के, दागे हैं भरपूर।
आह कृषक की आपका, दंभ करेगी चूर॥

छल-प्रपंच से आज तक, पूर्ण किए हैं ख्वाब।
जिसको देखो फिर रहा, डाले हुए नकाब॥

अदा न करते फर्ज हैं, सदा बिछाते जाल।
ऐसे चतुर–सुजान का, कौन पूछता हाल॥

क्यों बौराया बावरे, भौतिकता में मस्त।
उगता है सूरज सुबह, और शाम को अस्त॥

कितना भी धन जोड़िए, करके लाख फरेब।
रह जाएगा सब यहीं, नहीं कफन में जेब॥



–जहीर कुरैशी

108, त्रिलोचन टावर, संगम सिनेमा
के सामने गुरुबख्श की तलैया, पो.आ.
जीपीओ, भोपाल-462001
मो. 9425790565

तुम शासन के साथ हम, अंतिम जन के साथ।
सत्ता रह पाई नहीं, जन-गण-मन के साथ॥

नारों से लेने लगे, तलवारों का काम।
राजनीति करने लगी, हत्यारों का काम॥

राजनीति में दोस्तो, कुछ भी नहीं विचित्र।
अनायास पानी बना, अंगारों का मित्र॥

सबको लड़ने ही पड़े, अपने-अपने युद्ध।
चाहे राजा राम हों, चाहे गौतम बुद्ध॥

'काला धन' करते रहे,मुक्त हस्त से दान।
ये कलयुग के 'कर्ण' हैं, इनका कर सम्मान॥

एक झूठ को बोलकर, सौ के खोले द्वार।
सौ बोले, फिर पाँच सौ, उसके बाद हजार॥

उड़ने से पहले करे, पंछी सोच-विचार।
हैं निर्मल आकाश में, खतरों के अंबार॥

एक नहीं, दो-दस नहीं, उसके नाम अनेक।
जिसके नाम अनेक हों, पता न उसका एक॥

कभी जलन के साथ हैं, कभी ज्वलन के साथ।
अंगारे बन कर रहे, लोग अगन के साथ॥

झुग्गी पर है कीमती, परिधानों का बोझ।
चुकता करना है उसे, अहसानों का बोझ॥



–जय चक्रवर्ती

एम.1/149, जवाहर विहार,
रायबरेली-229010 (उ.प्र.)
ई-मेल : jai-chakrawarti@gmail-com

शब्दों ने जब-जब लिया, सच्चाई का पक्ष।
शब्दों के हिस्से पड़ा, क्रूर यातना-कक्ष॥

शब्दों के संसार में, था उनका ही जिक्र।
जीवन से बढ़कर जिन्हें, थी शब्दों की फिक्र॥

शब्दों के हिस्से पड़ी, जब शब्दों की चूक।
युगों–युगों उठती रही, अंतस्तल में हूक॥

जिनके शब्दों पर नहीं, कोई कहीं नकेल।
उनकी खातिर शब्द थे, सिर्फ ताश का खेल॥

हम शब्दों के खेल में, ज्यों-ज्यों हुए समर्थ।
शनैः-शनैः हर शब्द ने, खोया अपना अर्थ॥

थीं हुकूमतें झूठ का, नफरत का उद्योग।
थीं शब्दों पर बन्दिशें, अर्थों पर अभियोग॥

थे जिनके हर शब्द में, कर्तव्यों के बीज।
अधिकारों की दौलतें, थीं कब उन्हें अजीज॥

कहने को जनतंत्र में, था हर शब्द स्वतंत्र।
पर, हुकूमतों ने बुना, शब्द-शब्द षड्यंत्र॥

दहशत, साजिश, घुड़कियाँ, था सबका प्रारब्ध।
फिर भी बोली लेखनी, फिर भी बोले शब्द॥

शब्द हमारे ले सकें, ताकि समय से होड़।
कतरा-कतरा जिस्म का, हमने दिया निचोड़॥



-टीकम चन्दर ढोडरिया
'काव्यांजलि',पंचायत समिति के पास,
छबड़ा, जनपद-बाराँ (राज.)
ई-मेल : teekamchanddhodria@gmail-com

लहरों पर क्या लिख दिया, गोरी तेरा नाम।
घाट–घाट करती फिरी, हमें नदी बदनाम॥

सूखी नदिया कर रही, प्रश्न सभी से आज।
निर्वसना करते हुए, क्यों ना आई लाज॥

घाव दिखाएँ अब कहाँ, किसे दिखाएँ पीर।
पानी-बजरी लूट में, शामिल सभी वजीर॥

आए हैं अफसर नए, फैली वन में बात।
डर से पीले पड़ गए, वृक्षों के सब पात॥

धूप, शीत, पानी, पवन, पत्थर, आरी, धार।
जीवन-भर सहते रहे, जंगल सबकी मार॥

काँकड़ से पहुँची नजर, ज्यों ही मेरे गाँव।
अगवानी को आ गईं, यादें नंगे पाँव॥

दिन-भर किरणों ने लिखे, मधुर धूप के छंद।
स्याही फेरी साँझ ने, किया तमस में बंद॥

पगतलियों से पूछिए, देंगी स्वयं जवाब।
कहाँ-कहाँ कंकड़ चुभें, काँटे कहाँ जनाब॥

धरा–पुत्र के भाग्य पर, होते नित्य प्रहार।
बेमौसम बरखा कभी, कभी शीत फटकार॥

फटी लँगोटी एड़ियाँ, खर्चा कर्ज लगान।
इस पूँजी को साथ ले, जीता रहा किसान॥



-दिनेश रस्तोगी
8-बी, अभिरूप, साउथ सिटी
शाहजहांपुर-242226(उ.प्र.)
ई-मेल : dineshrastogi2013@gmail-com

गालिब-सा तर्ज-ए-बयाँ, गुरु रवीन्द्र-सी तान।
कबिरा-सा दोटूकपन, कविता है रसखान॥

अलख जगातीं डिग्रियाँ, याचक से हर द्वार।
खप्पर में केवल पड़ा, एक शब्द इनकार ॥

आतंकित पगडंडियाँ, सहमी-सहमी धूल।
दिग्दर्शक झुठला रहा, खुद के लिखे उसूल॥

निष्ठाएँ गिरवी हुईं, कुंठित है विश्वास।
प्रतिभा को करना पड़ा, आजीवन उपवास॥

देख शहर की शाम का, कौतुक अंधाधुंध।
गांवों की मुंडेर पर, जा बैठी है धुंध॥

चिन्ता-चिन्ता दिन कटे, करवट-करवट रात।
मिले हादसे पूछते, कुशल क्षेम की बात॥

दर्पण सुविधा का पकड़, देखे निज तस्वीर।
वे क्या बांचेंगे भला, जनता की तकदीर॥

पढ़ी प्रगति अखबार में, धँसे कीच में पाँव।
सत्ता अक्सर खेलती, आड़े-तिरछे दाँव॥

ब्रहमचर्य के नियम के, जड़े जहां थे फ्रेम।
वहीं चिरौटे कर रहे, कामकला से प्रेम॥

शोर, धुआं, उलझन, घुटन, भीड़, जाम, हड़ताल।
महानगर ढोते रहे, हम यूँ सालों-साल॥



-दिनेश शुक्ल
रामेश्वर रोड,
खंडवा-450001(म.प्र.)
मो.: 8989158284

उनके आँगन चाँदनी, अपने आँगन धूप।
कौन लिखे यह चाँदनी, कौन लिखे यह धूप॥

रेत-रेत सपने हुए, लिए पीठ पर क्रास।
आखिर मरुथल घर बिकी, इक पानी की प्यास॥

उसकी रोटी पर लिखा, इसका–उसका नाम।
भेड़ों-से बेचे गए, बँधुआ लोग गुलाम॥

लोग पढ़ें अखबार में, अपना भाग सुजान।
राशिफलों के बन गए, गुणा, भाग, मीजान॥

क्या मुस्लिम का दीन यह,क्या हिन्दू की जात।
दोनों ही इस दौर में, भूखे पेट अनाथ॥

मजहब ताने मारता, खोता धर्म विवेक।
दोनों चक्की के मगर, पाट यहाँ हैं एक॥

सब बौनी परछाइयाँ, चुप्पी करती शोर।
रात भेड़ियों की कथा, दिन हैं आदमखोर॥

कुछ आँसू कुछ सिसकियाँ, कुछ सपने बेनाम।
देख डाकिया वक्त का, क्या लाया पैगाम॥

अपनी ही आवाज को, पुल में कर तामीर।
निकलेंगे कल लोग जब, तब समझेंगे पीर॥

पेट, पट्टियाँ, रोटियाँ, भूख, गरीबी, क्लेश।
प्रजातन्त्र बदले यहाँ, बस सम्राट 'दिनेश'॥



-नरेश शाण्डिल्य
सत्य सदन, ए-5, मनसाराम पार्क,
संडे बाजार लेन, उत्तम नगर,
नई दिल्ली-110059
ई-मेल : nareshshandilya007@gmail-com

जागा लाखों करवटें, भीगा अश्क हजार।
तब जाकर मैंने किए, कागज काले चार॥

छोटा हूँ तो क्या हुआ, जैसे आँसू एक।
सागर जैसा स्वाद है, तू चखकर तो देख॥

मैं खुश हूँ औजार बन, तू ही बन हथियार।
वक्त करेगा फैसला, कौन हुआ बेकार॥

मैं ही मैं का आर है, मैं ही मैं का पार।
मैं को पाना है अगर, तो इस मैं को मार॥

सब-सा दिखना छोड़कर, खुद-सा दिखना सीख।
संभव है सब हों गलत, बस तू ही हो ठीक॥

खाक जिया तू जिंदगी, अगर न छानी खाक।
काँटे बिना गुलाब की, क्या शेखी क्या धाक॥

बुझा-बुझा सीना लिए, जीना है बेकार।
लोहा केवल भार है, अगर नहीं है धार॥

अपनी-अपनी पीर का, अपना-अपना पीर।
तुलसी की अपनी जगह, अपनी जगह कबीर॥

वो निखरा जिसने सहा, पत्थर-पानी-घाम।
वन-वन अगर न छानते, राम न बनते राम॥

पिंजरे से लड़ते हुए, टूटे हैं जो पंख।
यही बनेंगे एक दिन, आजादी के शंख॥



-नज़्म सुभाष
356/केसी-208, कनक सिटी,
आलमनगर, लखनऊ-226017
ई-मेल: nazmsubhash@gmail-com

खाली जेबों ने लिखा, पर्वों का इतिहास।
नदियों के सानिध्य में, हिस्से आई प्यास॥

भूख, गरीबी, जिल्लतें, सदियों से गुलजार।
बाकी लोगों के लिए, सजा हुआ बाजार॥

हमें न रोटी पेट-भर, क्षुधा किसी की रत्न।
अस्त-व्यस्त सी जिंदगी, करती लाख प्रयत्न॥

श्रम ही जिन का धर्म है, देह-स्वेद है योग।
धूल धूसरित राह ही, रखती उसे निरोग॥

व्यथित जिस्म से रूह तक, कैद रही मुस्कान।
शोषण को पोषित करें, चंद धूर्त इंसान॥

भूखी उम्मीदें जहाँ, मरती हों नित मौन।
फिर विकास से लाभ में, जरा सोचिए कौन॥

जिनके हिस्से तोंद थी, उनके हिस्से थाल।
मगर भूख के सामने, जुमला दिया उछाल॥

घोड़े ने जब भी लिखा, गदहों का इतिहास।
दरकिनार कर श्रम गया, शब्द लिखा उपहास।।

जवाँ हो रही सभ्यता, तोड़ समय का खेल।
आग बुझाते लोग अब, डाल-डाल पेट्रोल॥

क्रान्ति शब्द लिख तो दिया, लेकिन रखा खयाल।
हो जाएँ संतुष्ट सब, किन्तु-परंतु उछाल॥



-पार्थ त्रिपाठी
नीबी कला, झूँसी,
प्रयागराज -211019 (उ.प्र.)
मो : 9565127728

शब्द-शब्द करते रहे, कलमों से संघर्ष।
'हम' को 'मैं' कैसे 'लिखूँ', मिला नहीं निष्कर्ष॥

आँचल में कोहरा भरे, नयना धरे अलाव।
शाम शीत की दे रही, बंधन का प्रस्ताव॥

नीर भरे नैना झरे, मन की सारी बात।
रूठा मेरा चाँद जो, हुई अमावस रात॥

अपने यदि देते नहीं, जीवन में आघात।
कौन हमें ललकारता, थी किसकी औकात॥

भले निगोड़ी रात ये, लाख करे संघर्ष।
रोक नहीं सकती कभी, सूरज का उत्कर्ष॥

सजे सभी संयोग रस, सुर, लय, सरगम, साज।
स्वागत में यौवन खड़ा, आओ हे ऋतुराज!!

अपने घर की काँच-सी, दूजों की कचनार।
बिटिया से दो रंग का, कैसा है व्यवहार॥

फूल नहीं, कलियाँ नहीं, बन बेटी अंगार।
आज समय की माँग है, दुर्गा का अवतार॥

जाति-धर्म उन्माद का, फैला ऐसा कोढ़।
सिरहाने बैठा रहा, देश तिरंगा ओढ़॥

जिस तट को चूमें बिना, बढ़े न कोई धार।
उस तट को हक में मिला, इंतजार हर बार॥



-पीयूष कुमार द्विवेदी 'पूतू'
हिन्दी प्रवक्ता, जगद्गुरू रामभद्राचार्य
दिव्यांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ.प्र.)
मो. : 8604112963

राजनीति की नीति है, बड़ी अजब श्रीमान।
आँख छीनकर दे सदा, जो चश्मों का दान॥

ए.सी. में यूँ बैठकर, सोचें आप निदान।
जीते हुए अभाव में, मरते रहे किसान॥

कितने होरी नित मरें, बिना किए गोदान।
क्या सब जाएँ नर्क में, जरा बता भगवान॥

सागर तट बरसात हो, तरस रहे हैं खेत।
दिया प्रकृति को जो वही, पाएँ सूद समेत॥

लाठी जिसके हाथ में, भैंस उसी की जान।
लोकतन्त्र की है बची, एकमात्र पहचान॥

बाल बढ़े, दाढ़ी बढ़ी, किन्तु रहा लघु ज्ञान।
घूम रहे ढोंगी यहाँ, बनकर साधु सुजान॥

दूध चढ़ा पाषाण पर, करें फर्ज निर्वाह।
बच्चे मरते भूख से, किसे भला परवाह॥

कच्चे-कच्चे दिल हुए, पक्के हुए मकान।
पहले जैसी अब नहीं, रही गाँव की शान॥

चिट्ठी ने ई-मेल से, पूछी ऐसी बात।
तकिये के नीचे कभी, गुजरी तेरी रात॥

जीन्स मिले जितनी फटी, उतने ऊँचे दाम।
दिखता चारो ओर है, फैशन का परिणाम॥



-प्रतिभा इन्दु
बी-ब्लॉक,11 जी फ्लोर,1105,निमाई ग्रीन्स,
अलवर बाईपास रोड, भिवाड़ी (राजस्थान)
मो.7976093141- 8426085154

सम्बन्धों को काटता, कैंची बनकर स्वार्थ।
वनवासी से हो गए, प्रेम और परमार्थ॥

द्वेष-ईर्ष्या ने किया, घर-घर यहाँ प्रवेश।
कुंठा में जलने लगा, आज समूचा देश॥

राजनीति की तीलियाँ, जला रही तंदूर।
दिल्ली रोटी सेंकती, फिर भी दिल्ली दूर॥

नित घोटाले हो रहे, नित्य हो रही जाँच।
झूठ कुर्सियों पर डटा, जेल काटता साँच॥

इतने बदतर हो गए, इंसानी जज्बात।
अपनी खातिर ही करे, अपनों से ही घात॥

वही बड़ा है गाँव में, उसका ही सम्मान।
जिसके द्वारे शाम को, बैठें नित्य प्रधान॥

महानगर की हर सड़क, रही कुचलती भीड़।
ढूँढ़े से मिलता नहीं, पंछी को भी नीड़॥

अपने भाव-विचार में, रखना सबका ध्यान।
परहित रत होकर निरत, मिले मान-सम्मान॥

वातायन को खोलकर, पछुआ हुई प्रविष्ट।
पुरवा कैसे बच सके, होना उसे अशिष्ट॥

नित्य करें आराधना, देश-धर्म के काज।
बनी रहे यह एकता, समरस बने समाज॥



-प्रभु त्रिवेदी
'प्रणम्य',111,रामरहीम कॉलोनी,
राऊ, इंदौर-453331 (म.प्र.)
ई-मेल: Prabhutrivedi21@gmail-com

पिता हमारी पूर्णता, नाद बराबर शंख।
जैसे मोती सीप से, वरना सीपी खंख॥

पिता समंदर की तरह, जिसकी थाह अथाह।
वही नदी की नियति है, वही नदी की चाह॥

पिता हौसला पुत्र का, पत्नी का विश्वास।
सपनों के संसार के, पिता पात्र हैं खास॥

पिता प्रतिज्ञा भीष्म की, अर्पित करे शरीर।
उदय-अस्त विस्मृत करे, त्याग तीर-तूणीर॥

पिता पार्थ परिवार के, धीर-वीर-गंभीर।
लिखे कर्म से उम्र-भर, संघर्षों की पीर॥

पिता प्रेरणा-पुरुष हैं, पिता ज्ञान की खान।
पिता प्रदर्शक पंथ के, पिता मृदुल मुस्कान॥

पिता निरंतर नौकरी, एकाकी मजबूर।
पत्नी-बच्चों के लिए, मुस्कानों से दूर॥

पिता प्राण परिवार के, घर के हैं उल्लास।
खुशियाँ सबको बाँटते, चिंता रखते पास॥

पिता तत्व ब्रम्हांड के, अंशुमान के अंश।
प्रेरक-पोषक सृष्टि में, हैं वसुधा के वंश॥

पिता पराक्रम-पीठिका, पिता पोत-पतवार।
पिता पूर्णता पुण्य की, पिता परम आधार॥



–बनज कुमार 'बनज'
ई-492, लालकोठी योजना,
जयपुर-302015
मो : 9414053285

फूलों के सँग रह रहा, मैं माटी का ढेर।
मुझमें भी बस जायगी, खुशबू देर-सबेर॥

बरगद पनघट पर खड़ा, लिखता है इतिहास।
किस-किस ने किस-किस तरह,यहाँ बुझाई प्यास॥

तुमने तो बस कह दिया, कल करना अब बात।
रोकूँगा मैं किस तरह, आँसू सारी रात॥

बीच सफर से चल दिया, ऐसे मेरा ख्वाब।
आधी पढ़कर छोड़ दे, जैसे कोइ किताब॥

जाने कब खाली मुझे ,करना पड़े मकान।
मैं समेटकर इसलिए, रखता हूँ सामान॥

नदिया धीरे चल जरा, जाना है उस पार।
बुलवाया है आज तो, उसने पहली बार॥

पनप रहा है देश में, ये कैसा उद्योग।
ढोते जिंदाबाद के, नारे मुर्दा लोग॥

फूल, कली, पत्ते सभी, नाचे मिलकर साथ।
जब बसंत ने रख दिया, इनके सिर पर हाथ॥

बढ़ते हैं जिस-जिस तरफ, निगल रहे हैं गाँव।
कोई तो रोको जरा, इन शहरों के पाँव॥

क्या सचमुच ये रह गया, रहने लायक गाँव।
ना पेड़ों के हाथ हैं, ना पानी के पाँव॥



–बृजनाथ श्रीवास्तव
21, चाणक्यपुरी, ई-श्यामनगर,
न्यू पीएसी लाइंस, कानपुर-208015
मो. 9795111907

लोकतन्त्र बौना हुआ, गूँगा हुआ समाज।
दुःशासन के हाथ में, द्रुपदसुता की लाज॥

ढोल मंजीरा धुन बजे, सजी हुई चौपाल।
चमचों से मुखिया कहे, गिरनी कल दीवाल॥

आने थे मधुमास के, दिन आए पतझार।
जन गण चर्चा में जुड़ा, माली का किरदार॥

दस घर मिलकर चूसते, नब्बे घर का खून।
बारहमासी खेल यह, क्या फागुन क्या जून॥

भागूँ कैसे छोड़कर, जर, जमीन, परिवार।
छीन लिया कल जायगा, बता रहा अखबार॥

समय-यक्ष है कर रहा, नित-नित नए सवाल।
प्रश्नों का पथ मोड़ता, धर्मराज वाचाल॥

जन गण अब तक सुन रहा, उनके मन की बात।
किन्तु न समझें वे कभी, जनता के जज्बात॥

हे! नट तेरे पास में, जादू-भरा चिराग।
जिधर नजर तेरी गई, उधर आग ही आग॥

जन गण तू ही देख ले, निज 'कर' का उपयोग।
उनके चरण विदेश में, तुझे भूख के जोग॥

सारे वादे नीतियाँ, फलतीं जैसे बेंत।
उधर गाँव में चर गयीं, गायें सारे खेत॥



–ब्रह्मदेव शर्मा
सारस्वत सदन, डी-23,
फ्रीडम फाइटर एनक्लेव,
नेब-सराय, नई दिल्ली-110068
मो : 8076221864

नहीं मुकम्मल आज तक, कोई यहाँ निजाम।
राजतंत्र अच्छा नहीं, लोकतन्त्र बदनाम॥

घर मे तितली-फूल के,घायल हैं अहसास।
कुंडी-ताले-चाबियाँ, सब काँटों के पास॥

खुशियाँ चाकर हो गईं, सुख का दिखा न ठौर।
हँसी और मुस्कान गुम, बेचौनी का दौर॥

रेतें चाहत का गला, ओढ़ धर्म की आन।
बातें तो हैं प्यार की, नफरत के फरमान॥

प्यासे-प्यासे से दिखें , बादल,नदिया, ताल।
बेशर्मों के गाँव में, चुल्लू करे मलाल॥

चमक पास रहती नहीं, हिल जाती बुनियाद।
शीशमहल से झोपड़ी, जब करती प्रतिवाद॥

जुगनू गाने लग गए, अँधियारों के गीत।
बोल रहे सूरज रहे, अब हमसे भयभीत॥

गुलमोहर खामोश है, गुमसुम खड़ा कनेर।
शूलों के सँग फूल भी, रहते आँख तरेर॥

खुली याद की पोटली, महक गए जज़्बात।
नाचे चम्मच थालियाँ, बेला और परात॥

दर्द समंदर हो गए, नदियां हुईं उदास।
खुशियों की सौगात है, सिर्फ कुओं के पास॥



-भगवती प्रसाद गौतम
1-त-8,'अंजलि',दादावाड़ी,
कोटा-324009(राज.)
ई-मेल : bpgautam-1943@gmail-com

गीला-सूखा बिसरकर, धर छाती पर भार।
माँ ने ही साधा सदा, ममता का संसार॥

जाजम,कथरी,गोदड़ी,माँ वह लीर-लिबास।
जिसके बूते हो चला,जीवन ही मधुमास॥

क्या नगरी,क्या बस्तियाँ, क्या कस्बे,क्या गाँव।
जन्नत से भी है घनी, उस आँचल की छाँव॥

कालिंदी की कोकिला,मुरली की मृदुतान।
घर-आँगन सबके लिए,माँ मोहक मुस्कान॥

अमित आस वह भोर की, संध्या का विश्वास।
सच, कितने धनवान हैं, माँ है जिनके पास॥

अनुभव का सागर सघन, घर-भर का विश्वास।
कुनबे की पगड़ी पिता, खुशियों का मधुमास॥

प्रखर सूर्य-सा तन-वदन, दिल जैसे आकाश।
द्वार-दरीचों को दिया, बरबस परम-प्रकाश॥

सख्त बिछौनों-से नियम, पिता प्रबल आवाज।
कल तक जो था कष्टप्रद, वही सुहावन आज॥

समय चाल उल्टी चला, गया दुलत्ती झाड़।
लाँघ गए फिर भी पिता, हँस-हँस कई पहाड़॥

सदा जुटे खट-कर्म में, पर लब साधे मौन।
पौध-पौध सींचा किए, पिता सरीखा कौन॥



-डॉ.भावना तिवारी
सी-244, सेक्टर-19,
नोएडा-201301
ई-मेल: drbhavnatiwari@gmail-com

खबरों में छाए हुए, दंगल, दलदल, कीच।
उतना ही ऊँचा उठा, जो जितना है नीच॥

गैंगरेप घटना हुई, जैसे कोई खेल।
बरसों न्यायालय चला, और हो गई बेल॥

अधरों पर पाबन्दियाँ, आतंकित मुस्कान।
आँखें बंजर हो गईं, जग लगता सुनसान॥

वक्त मदारी-सा चले, नई-नई नित चाल।
और जमूरे हम सभी, बजा रहे हैं गाल॥

आह! सभ्यता को कहाँ, ले आई है भूख।
सबकी आँखों का गया, पानी लगभग सूख॥

हुनरमंद फाका करें, प्रतिभाएं लाचार।
चाटुकारिता सीख ले, होगा बेड़ा पार॥

जीवन के दुख-दर्द का, गणित बहुत है भिन्न।
कभी-कभी बिन बात भी, मन हो जाता खिन्न॥

हाथों में माला लिए, करें रात-दिन जाप।
मन-मंदिर से वे कभी, मेट सके क्या पाप॥

प्रीति-भोज होते रहे, राजा जी के द्वार।
सदियों से भूखा रहा, मटरू का परिवार॥

मुस्कानें भी कर रहीं, मुझसे अब प्रतिवाद।
कैसे मैं हँसकर करूँ, पीड़ा का अनुवाद॥



-भोलानाथ कुशवाहा
बाँकेलाल टंडन की गली, वासलीगंज
मिर्जापुर-231001(उ.प्र.)
मो. 9335466414

सूरज जी बतलाइए, आई कैसे रात।
झूठ विजेता बन रहा, सच के हिस्से मात॥

अपराधी अब भी सबल, निर्बल रोता आज।
गली-गली में चल रहा, बंदूकों का राज॥

बिकी हुई है मीडिया, जनता है हैरान
अच्छी खबरें गौण हैं, देखो भूत-मशान॥

समझौता है जिंदगी, उल्टी बहे बयार।
बाहर कौवे-चील हैं, अंदर रँगे सियार॥

बड़ा कठिन है तोड़ना, रिश्तों का व्यवहार।
पीपल जितना भी कटे, उग आता हर बार॥

पिंजरे का तोता उड़ा, खाली हुआ बजार।
चाहत मन की रह गई, छूट गया संसार॥

नयी जवानी कब रुकी, तोड़ गई सब बंद।
जैसे नदी पहाड़ की, निकल गई स्वच्छंद॥

नयी सभ्यता आ गई, औरत हुई शरीर।
रक्षक ही भक्षक बना, और बढ़ गई पीर॥

खुद ही बांटें देश को, भारत की जय बोल।
करनी-कथनी खोलती, राष्ट्र-भक्ति की पोल॥

लोकतन्त्र तब है सफल, जब सबकी परवाह।
कोई भी छूटे नहीं, मिले सभी को राह॥



-महेश कटारे 'सुगम'
'काव्या' चंद्रशेखर वार्ड, बीना
जिला-सागर-470113,म.प्र.
मो. 9713024380

दौलत की अभ्यर्थना, गुंडों पर हो प्रीत।
इसी तरह से हो रही, लोकतन्त्र की जीत।

लोकतन्त्र की राह का, देख लिया परिणाम।
पकी-पकाई खीर है, अब कुत्तों के नाम॥

इंकलाब के वास्ते, उठते रोज सवाल।
पर आँखों के सामने , आती रोटी-दाल॥

छोटा मत समझो हमें, हम हैं गैरतमंद।
तुम औरों के गीत हो, हम हैं मौलिक छंद॥

मैंने जब मांगी दुआ, माँ बोली आमीन।
कदम-कदम बिछते गए, खुशियों के कालीन॥

पद लिप्सा के वास्ते,ये बातें वरदान।
हर दंगा है भूमिका, लाशें पाएदान॥

नाकामी तो बोएगी, मायूसी के बीज।
बेहतर है बांधे रखें, साहस के ताबीज॥

खौफनाक बम हादसा, हृदयविदारक चीख।
रूहों में चुभती रही, सदमे की तारीख॥

रह-रह कर उठती रही, एक अजानी हूक।
जब जब भी खोले गए, यादों के सन्दूक॥

'सुगम' बदलते दौर का, बदल गया इतिहास।
रामचन्द्र ने दे दिया, माता को वनवास॥



-डॉ. महेश मनमीत
सैदपुर, अकबरपुर,
अंबेडकर नगर-224146(उ.प्र.)
मो.9415151055

लिए चने की पोटली, निकला नंगे पाँव।
मुझसे मेरी भूल ने, छीना मेरा गाँव।

खून-पसीना बेचकर, मिला यही ईनाम।
उसके हिस्से रोटियाँ, अपने हिस्से काम॥

साँझ सवेरे दोपहर, मंडराती है चील।
शायद बस्ती हो गई, जंगल में तब्दील॥

अफसर को बँगला मिला, नेता जी को ताज।
जनता के हिस्से पड़ा, ढाई किलो अनाज॥

बस सूरत को छोड़कर, हैं गुण-धर्म समान।
यत्र-तत्र-सर्वत्र हैं, बिना पूँछ के श्वान॥

भ्रष्टाचारी-तंत्र में, धनपशुओं की मौज।
दर-दर ठोकर खा रही, बेकारों की फौज॥

गूँजी फिर गुम हो गई, सन्नाटे में चीख।
अबला अपनी लाज की, रही माँगती भीख॥

संगत पर मुझको दिखा, जब दुनियावी-रंग।
मैं दुनिया में आ गया, छोड़ सभी सत्संग॥

जो अपनी सद्वृत्तियाँ, कर देते हैं होम।
दोनों की गति एक-सी, क्या बाभन क्या डोम॥

किया डूबते वक्त में, उसने यह अहसान।
बाँधी मेरी पीठ से, इक भारी चट्टान॥



-यश मालवीय
ए-111, मेंहदौरी कॉलोनी,
प्रयागराज-211004
मो. 6307557229

हर लम्हा ज्वरग्रस्त है, हर लम्हा है ज्वार॥
दाढ़ी चोटी सल्तनत, धरा धर्म सरकार॥

हर हत्या पर दे रहे, हत्यारों को दाद।
दिल्ली में बैठे हुए, सरकारी नक्काद॥

बड़-बड़ करता नींद में, गाँधी को कर याद।
खुलकर रोता ही नहीं, कभी अहमदाबाद॥

खेती भ्रष्टाचार की, मना रही त्योहार।
बंद किवाड़े रह गए, जीवन-मूल्य फरार॥

हम संस्कृति के सारथी, है आराम हराम।
पूजें नाथूराम को, बोलें जय श्री राम॥

जातिवाद के जहर से, सच के नीले होंठ।
जब-जब जागे सल्तनत, मांगे केवल वोट॥

दुख को भुज-भर भेंटता, सुख को मारे लात।
कबिरा जागे हर घड़ी, रोये सारी रात॥

कथा कबीरा की सुनो, जिसका आदि न अंत।
हारे पंडे मौलवी, हारे संत महंत॥

सिर्फ आदमी धर्म है, सिर्फ आदमी जात।
सोच-समझकर आँकिए, कबिरा की औकात॥

रेखाओं के सौ गणित, सौ निर्मेय प्रमेय।
चलने वाले जानते, किसका क्या पाथेय॥



-यादराम शर्मा
गाँव-फरीदपुर, पोस्ट-सुमेरा,
जिला-अलीगढ़(उ.प्र)
ई-मेल: yadramsharmapoet@gmail-com

कुत्सित-भाव-प्रवाह का, हो तम हमसे दूर।
मिलन-भाव व्यवहार हो, रिश्तों में भरपूर॥

रिश्तों में अपनत्व की, ऐसी बिखरे गंध ।
लिखें समय के पृष्ठ पर, फिर-फिर नेह-निबंध॥

बाँटी जिसने उम्र-भर, छल-फरेब की गंध।
कब भाए उस व्यक्ति को, मानवीय संबंध॥

जिसे दिखाई दे रही, केवल अपनी शान।
कैसे रक्खेगा भला, वो किसान का मान ॥

सोच-समझ के दौर का, जहाँ अस्त दिनमान।
अंधकार का उस जगह, करते सब गुणगान॥

अन्न उगाये वो स्वयं, कीमत आँके और।
ये कैसा व्यवहार में, उम्मीदों का दौर॥

हृदय-भाव से हो अगर, तुम किसान के मित्र।
दिखा रहे फिर क्यों इसे, अपना स्याह चरित्र॥

आश्वासन के नाम पर, खूब परोसी खीर।
किन्तु न बदली आज तक, 'होरी' की तकदीर॥

जब गाँधी के खून से, धरती लहूलुहान।
जिन्दा है फिर किस तरह, अपना हिंदुस्तान॥

बदली जब से झूठ ने, सत्ता की तकदीर।
धुंधली-धुंधली-सी लगे, अब सच की तस्वीर॥



-योगिता 'जीनत'
प्लॉट न.-846, रामनगर,
शास्त्री नगर जयपुर (राज.)
ई-मेल : neha-sharmaa29@gmail-com

मंजिल मेरी दूर है, थके हुए हैं पाँव।
जाने मुझको कब मिले, सपनों वाला गाँव।

मैं इक बेकल-सी नदी, तू सागर बेचैन।
तेरे बिन कटते नहीं, अब मेरे दिन-रैन॥

जब-जब सोचा मैं लिखूँ, कोई सुंदर गीत।
तब-तब शब्दों में ढली, तेरी-मेरी प्रीत॥

रे मन तू है बावरा, करे जगत से प्रीत।
टूटे तो मत रोइयो, ये है जग की रीत॥

तुमने छोड़ा साथ तो, टूट गई हर आस।
साँसों ने भी ले लिया, जीवन से सन्यास॥

मैं हूँ धागा सूत का, तू रेशम का तार।
फिर कैसे निभता भला, तेरा-मेरा प्यार॥

नदिया मिलने को चली, ले मन में उल्लास।
लेकिन बुझती ही नहीं, इस सागर की प्यास॥

पनघट तक सूने पड़े, खाली-खाली गाँव।
पंथी को मिलती नहीं, अब पेड़ों की छाँव॥

लेकर आई चाँदनी, तारों की बारात।
दुल्हन-सी सजने लगी, देखो काली रात॥

नादाँ था समझा नहीं, वो दुश्मन की चाल।
पंछी जा बैठा वहीं, जहाँ बिछा था जाल॥



-डॉ. योगेन्द्र दत्त शर्मा
कवि कुटीर, के.बी.47, कविनगर
गाजियाबाद-201002
मो. 9311953572

क्या पूजा, क्या प्रार्थना, क्या निर्जल उपवास।
मेरे माथे तो लिखी, जनम-जनम की प्यास॥

भले न हम रवि,शशि, नखत, हों चाहे खद्योत।
यह क्या कम है, हम सतत, जगा रहे हैं जोत॥

मांस नोचता ही रहा, कल सबका जो गीध।
खून लगाकर पंख में, बनने चला शहीद॥

दिखा रहा है अब समय, अपना विकट चरित्र।
गिरी दिव्यता कीच में, घूरे हुए पवित्र॥

आजीवन वंचित रहे, जिनकी झुकी न रीढ़।
पुरस्कार पाती रही, विदूषकों की भीड़॥

साम-दाम से दण्ड से, निकल रहे सब काम।
नैतिकता,प्रतिबद्धता,किस चिड़िया का नाम॥

सद्गुरु भी अच्छा मिला, दिया खूब गुरुमंत्र।
इस संभ्रांत-समाज में, सफल सिर्फ षड्यंत्र॥

क्या पाया, क्या खो गया, काहे का अफसोस।
पाने की कीमत चुका, किस्मत को मत कोस॥

हुआ तुम्हें नरसिंह! क्या, कहाँ गँवा दी मूँछ।
यहाँ हिलाते सींग तुम, वहाँ हिलाते पूँछ॥

मछली आई रेत पर, करने को आखेट।
खैर मना अपनी जरा, मछुए! जाल समेट॥



-रघुबिन्द्र यादव
प्रकृति भवन, नीरपुर
(नारनौल)-123001, हरियाणा
ई-मेल : ryeditor@gmail-com

राजा हैं नव दौर के, लोकलाज से दूर।
कहाँ नम्रता सादगी, रहें दंभ में चूर।।

फैला सभ्य समाज में, जाने कैसा रोग।
आहत करके और को, खुशी खोजते लोग।।

है रिश्वत के सामने, बेबस अभी विधान।
गाँव लूटकर खा गए, मुखिया, पंच, प्रधान।।

पीट रहे हैं लीक को, नहीं समझते मर्म।
आडम्बर को कह रहे, कुछ नालायक धर्म।।

सत्ता पूरे कर रही, उनके ख्वाब हसीन।
जिनकी नीयत लूटना, जंगल और जमीन।।

जुमले वादे घोषणा, भाषण लच्छेदार।
लोकतंत्र से लोक को, मिले यही उपहार।।

नायक बने समाज के, झूठे, दुष्ट, लबार।
अब तो हाँडी काठ की, चढ़ती बारम्बार।।

ज्ञानी ध्यानी मौन हैं, मूढ़ बाँटते ज्ञान।
पाखण्डों का दौर है, सिर धुनता विज्ञान।।

सत्ता ने अब कर लिए, आँख-कान सब बंद।
उसको शब्द विरोध के, बिलकुल नहीं पसंद।।

जनता जिससे कर रही, लोकलाज की आस।
बची नहीं संवेदना, उस कुर्सी के पास।।



-रमेश गौतम
78 बी, संजय नगर,
बरेली -243005 (उ.प्र.)
ई-मेल : rameshg78b@gmail-com

उड़े चिरैया दूर तक, घर, आंगन, खलिहान।
तब ला पाती चोंच-भर, बच्चों का जलपान॥

निर्जल व्रत करती रही, सबकी सींची प्यास।
मंदिर और मनौतियाँ, बस माँ का इतिहास॥

माँ लिखती है त्याग का, रोज नया अध्याय।
माँ का इस ब्रम्हांड में, कहीं नहीं पर्याय॥

सबने अपना सुख जिया, सबको हुई थकान।
माँ गौरैया की तरह, भरती रही उड़ान॥

माँ की ममता नेह का, रखती नहीं हिसाब।
भोर जगे आशीष की, लिखती नई किताब॥

माँ मिसरी की लोरियाँ, माँ परियों का गाँव।
माँ सूरज की धूप है, माँ तारों की छाँव॥

माँ सरगम,सुर ताल लय, माँ वीणा का तार।
माँ टूटी तो टूटती, रिश्तों की झंकार॥

माँ कुटुम्ब का केंद्र है, और परिधि परिवार।
एक बिन्दु में सिमटकर, करती बेड़ा पार॥

माँ अधरों पर अक्षरा, माँ पहला उच्चार।
माँ स्वर-व्यंजन में निहित, ध्वनियों का उपहार॥

माँ लिखती है त्याग का, कालजयी अध्याय।
आखर-आखर झाँकती, जिसमें पन्ना धाय ॥



-रवि खंडेलवाल
207, व्यंकटेश नगर,
ऐरोड्रोम रोड, इंदौर-452005 (म.प्र)
ई-मेल : ravikhandelwal14sep@gmail-com

साये में भी पेड़ के, लगती तीखी धूप।
शाखों पर पत्ते नहीं, कैसा अजब स्वरूप।

सुरसा के मुँह-सी बढ़ी, महँगाई की मार।
कुंभकरण की नींद में, सोई है सरकार॥

उल्फत का करता नहीं, कोई अब इजहार।
नफरत की बहने लगी, चारो ओर बयार॥

डर के मारे पीड़िता, रहती घर में बंद।
उद्घाटन करते मिले, दुष्कर्मी सानंद॥

सच सहमा दुबका खड़ा, झूठ हुआ उद्दंड।
लीला कह कर राम की, बाँट रहा पाखंड॥

नारे उपजे मंच पर, 'बढ़कर गोली मार'।
जो बोले प्रतिपक्ष में, समझो वो गद्दार॥

क्यों हरने पर हो तुले, इन दुखियों के प्रान।
हैं जीवन के प्रान ये, दाता अन्न किसान॥

रहने के लायक नहीं, बचा देश में ठौर।
सुप्रीमो भी कह रहे, चलो कहीं अब और॥

राम और रहमान की, चर्चा में मशगूल।
संसद अपने देश की, गई देश को भूल॥

गीता और कुरान के, भूल गए हैं मंत्र।
जन सेवक को याद हैं, सत्ता के षड्यंत्र॥



-राजपाल सिंह गुलिया
राजकीय प्राथमिक पाठशाला, भटेड़ा
तहसील व जिला-झज्जर-124108 (हरियाणा)
मो. 9416272973

माली लाया बाग में, ताजा अध्यादेश।
गुल आएंगे खार से, बड़े अदब से पेश॥

घुसी सियासत भीड़ में, किया दीन लाचार।
मानवता को चौक पर, दिया पीट कर मार॥

सुन सुन उनके झूठ को, सब जन थे संतुष्ट।
सच आया जब सामने, हुए बहुत से रुष्ट॥

पहले सोच-विचार कर, कर फिर तहकीकात।
आँख मूँद कर मान मत, सुनी-सुनाई बात॥

हालत मेरी जानते, फिर भी पूछें हाल।
कुछ ऐसे भी खींचते,लोग बाल की खाल॥

लोकतन्त्र बस सिर गिने, देखे सिफ्त न खोट।
मैं भी इसमें वोट हूँ, तू भी इसमें वोट॥

अब लोगों के बीच से, गायब हुआ यकीन।
सही-झूठ का फैसला, करने लगी मशीन॥

समझ लिया है बाप को, बेटे ने रोबोट।
लाये जो आराम से, खींच-खींचकर नोट॥

दुविधा में है सत्य अब, चुने कौन-सी राह।
लिए आंकड़े झूठ के, अड़ी खड़ी अफवाह॥

किया समय ने देख लो, ऐसा क्रूर मजाक।
सपने सारे कह गए, हमको तीन तलाक॥



-डॉ. राजेन्द्र गौतम
906, झेलम, प्लॉट न.8,
सेक्टर-5, द्वारका नई दिल्ली -110075
ई-मेल: rajendragautam99@yahoo-com

सुनी-अनसुनी रह गई, जन के मन की बात।
इधर गगन में गूँजती, इनके मन की बात॥

भूख, दरोगा, रोग की, पड़ी पेट पर लात।
इधर गगन में गूँजती, इनके मन की बात॥

भीड़ भेड़ियों की जुटी, नोच रही है गात।
इधर गगन में गूजती, इनके मन की बात॥

लोकतन्त्र नंगा हुआ, ऐसी बिछी बिसात।
इधर गगन में गूँजती, इनके मन की बात॥

जंगल और जमीन पर, गिद्ध लगाएँ घात।
इधर गगन में गूँजती, इनके मन की बात॥

लाठी, गोली, सींखचे, रोज मिले सौगात।
इधर गगन में गूँजती, इनके मन की बात॥

गाँव, नगर झुलसा रहे, जहरीले ज़ज्बात ।
इधर गगन में गूँजती, इनके मन की बात॥

और धधकने दो इसे, आ जाने दो ताव।
जब तक बाकी रात है, जलता रहे अलाव॥

'अनिहारे' को काटते, आधी 'जिनगी' पार।
कुंद नहीं फिर भी हुई, इस हँसिये की धार॥

मौसम चौथ बसूलता, तेरी बाँह मरोड़।
मत सह अब यह और तू, इसका जबड़ा तोड़॥



-राजेन्द्र तिवारी
'तपोवन' 38-बी, गोविंदनगर
कानपुर-208006
ई-मेल: rajendratiwari121@gmail-com

मूल्यों के विध्वंस का, निर्देशक है कौन।
काल-यक्ष के प्रश्न पर, धर्मराज हैं मौन॥

राजनीति का मंच हो, चाहे कोई मंच।
सारी करतूतें वही, सारे वही प्रपंच॥

प्रभुता पाकर हो गए, लोग कुतुबमीनार।
ऊँचाई के फेर में, छूट गया आधार॥

जिस क्षण जागी चेतना, बुद्धि हो गई शुद्ध।
कोई हुआ कबीर तो, कोई गौतम बुद्ध॥

महंगाई के दौर में, ईसा बना गरीब।
टंगी हुई है जिन्दगी, साँसे हुईं सलीब॥

रचनाकर्मी रच रहे, नूतन रचना धर्म।
भाव-नदी डूबे बिना, खोजें कविता-मर्म॥

सिर्फ नफे की सोचना, हुआ मनोविज्ञान।
अंधे बाँटें रेवड़ी, कहते हैं अनुदान॥

चौराहे सूने हुए, अस्त-व्यस्त कानून।
दिन डूबा बढ़ने लगे, शहरों के नाखून॥

खुदगर्जी ने कर दिया, देश-प्रेम का खून।
दफा तीन सौ दो लिए, बेबस है कानून॥

पहले रावण एक था, अब हो गए तमाम।
किसका-किसका वध करें, दुविधा में हैं राम॥



-राजेन्द्र बहादुर सिंह 'राजन'
ग्राम-फत्तेपुर, पो.बेनीकामा,
जन.रायबरेली-229402
मो.8601551022

बेल चढ़ी आतंक की, पाकर पानी-खाद।
विषकन्या-सी कर रही, जो सबको बर्बाद॥

अपने भीतर क्या दिखें, उन्हें मानसिक रोग।
एक-दूसरे पर करें, व्यंग्य स्वयं जो लोग॥

समय-शिला पर बैठकर, आओ करें विचार।
कहाँ किस तरह खो गया, अपना शिष्टाचार॥

हर चौराहे पर शकुनि, दुर्योधन के संग।
उर-पिचकारी में भरे, छल-प्रपंच के रंग॥

सीता, रुक्मिनि, द्रौपदी, लुटी बीच बाजार।
राम, कृष्ण क्यों आज तुम, हुए विवश-लाचार॥

गाँधी बनने के लिए, ढोंग न करिए आप।
गाँधी के व्यक्तित्व की, कहाँ आप पर छाप??

भाग्यहीन सब हो गए, प्रतिष्ठान-उद्योग ।
राजनीति में आ गए, जब से पागल लोग॥

प्यार-प्यार मत कीजिये, सरल नहीं यह प्यार।
जोखिम से भरपूर यह, धारदार तलवार॥

बुनता मानव रात-दिन, मन-मकड़ी का जाल।
फिर उसमें फँसकर स्वयं, हो जाता बेहाल॥

धन, बल, पद, सम्मान का, पाल रहे जो दर्प।
दीख नहीं पड़ता उन्हें, अहंकार का सर्प॥



-राजेन्द्र वर्मा
3/29, विकास नगर,
लखनऊ-226022
मो. : 8009660096

सच के घर में झूठ का, लगा हुआ दरबार।
सत्ता ने हमको दिया, कुढ़ने का अधिकार॥

सच को तो करना पड़ा, कालकूट का पान।
झूठ सत्य का भेष धर, लूट रहा सम्मान॥

सदाचार-सत्कार्य का, बंद पड़ा उद्योग।
भ्रष्ट आचरण हो रहा, ज्यों संक्रामक रोग॥

समता के प्रतिपक्ष में, विचलित है तम-तोम।
धरा धसकती जा रही, ऊँचा उठता व्योम॥

दफ्तर में बैठा हुआ, मंत्री करे धमाल।
धरने पर बैठे कृषक, हुए और बेहाल॥

जीवन-भर आए नहीं, जन सेवा के काम।
जन सेवा के केंद्र हैं, आज उन्हीं के नाम॥

गौतम-गांधी थे कभी, भारत माँ की शान।
आज गोडसे से हुआ, अपना देश महान॥

लोकतन्त्र को है नहीं, अब सच की दरकार।
भयाक्रांत है लेखनी, कैसी है सरकार॥

फासीवादी चाहता, मनमाना व्यवहार।
जिसने की आलोचना, उसको कारागार॥

संविधान का हो रहा, गुपचुप काम तमाम।
धर्मान्धों की भीड़ से, है बस उसको काम॥



-राजेश जैन राही
काव्यालय, 35, प्रथम तल,
कमला सुपर मार्केट, तेलघानी नाका,
स्टेशन रोड, रायपुर-492001 (छ.ग.)
ई-मेल: rajeshjainrahi@gmail-com

आँख मूँदकर सो गया, कोने में इंसाफ।
साफ-साफ कहता नहीं, सुने नहीं कुछ साफ॥

कोने में सिमटा हुआ, गुमसुम है सद्भाव।
सबसे ऊपर ठाठ से, पैसे का प्रस्ताव॥

ऐन वक्त पर हो गए, अपने सब खामोश।
तब जाकर आया हमें, पूरा-पूरा होश॥

सत्ता के घर जाइए, टूट गया जो नीड़।
न्याय मिलेगा आपको, साथ रहे पर भीड़॥

वक्त देखकर फैसले, करता है अब न्याय।
वक्त देख बदली यहाँ, अपनों की भी राय ॥

खारिज है अब व्याकरण, समीकरण हैं खास।
पास हुआ हर जाँच में, रिश्वत जिसके पास॥

बदल गया है आजकल, बातचीत का अर्थ।
बिना अर्थ लगने लगा, सबको सब कुछ व्यर्थ॥

सबके अपने तर्क हैं, सबकी अपनी राय।
मौन खड़ा है देश में, लालकिला असहाय॥

रोटी की खातिर करे, रोटी अब उपवास।
राजनीति में जा फंसी, फिर खेतों की आस॥

लोकतन्त्र की पीठ पर, करते हैं कुछ नृत्य ।
मौसम के अनुसार ही, होते उनके कृत्य॥



-रामकुमार कृषक
सी-3/59, नागार्जुन नगर,
सादतपुर विस्तार दिल्ली-110090
मो: 9868935366

मच्छ–कच्छ–वाराह से, नरसिंह तक का दौर।
कल के पशुयुग का हुआ, अब कलयुग सिरमौर॥

राजनीति में रम गया, जब से जय श्रीराम।
राम–नाम का हो गया, तब से काम तमाम॥

देशप्रेम के घाट पर, कंपनियों की भीड़।
बंदर को बंदर कहा, गया बया का नीड़॥

व्यर्थ गया सब चीखना, चिल्लाना बेभाव।
लोकतन्त्र की देह के, खुले हुए सब घाव॥

लोकतन्त्र के वक्ष पर, ठोंक-ठोंक कर कील।
तानाशाही कर रही, धन-पशुओं से डील॥

सड़कों पर जो घट रहा, उसका है संदेश।
भगवा ओढ़े आ रहा, फासीवाद विशेष॥

अच्छे दिन आए नहीं, बुरे आ गए और।
खुलकर दस्तक दे रहा, फासीवादी दौर॥

डरकर मर जाना बुरा, है साहस पर दाग।
जीते जी क्यों मौत के, सिर पर रक्खें पाग॥

सड़कों पर पहरे लगे, ठंडे पहरेदार।
संसद में सोया हुआ, चौकस चौकीदार॥

आयें-खायें अब यहाँ, मनमाफिक लें छूट।
कानूनी कर दी गई, है मेहनत की लूट॥



-रामबाबू रस्तोगी
1287/14, इन्दिरा नगर
(डिग्री कॉलेज के पीछे),
रायबरेली-229001
मो. 9235882306

किसे सुनाये चाँदनी, अपने मन की पीर।
सब दुःशासन हो गए, राजा और वजीर॥

राजनीति शुभ-लाभ है, सत्ता मोहनभोग।
लोकतन्त्र उनके लिए, ऋद्धि-सिद्धि का योग॥

सूरज बाँटे स्याहियाँ, दिन हो गए गुलाम।
सारा मौसम हो गया, अँधियारों के नाम॥

धूल, धुयें में बुझ गया, नई भोर का चाव।
किन हाथों में सौंप दी, हमने अपनी नाव॥

रूखा-चिटका मुँह लिए, बिलख रहा है ताल।
सबकी रोटी छिन गई, क्या काँटा क्या जाल॥

मैं खुश तुम खुश हाथ में, तलवारों की मूठ।
यही खुशी इस दौर का, सबसे लंबा झूठ॥

समय सफरनामा लिखे, समय लिखे इतिहास।
कितने दिन मोती रहा, बेशऊर के पास॥

राजनीति अभिशप्त है, लोकतन्त्र मजबूर।
अंधी-बहरी कुर्सियाँ, सत्ता-मद में चूर॥

इश्तहार-सी चाँदनी, कड़वे सच-सी धूप।
राजा तेरे राज्य में, प्यासे भटकें कूप॥

अंगारों पर चाँदनी, काँटों पर हो धूप।
राजा जी ने यूं लिखा, मौसम का प्रारूप॥



-डॉ.रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'
86,तिलक नगर, बाई पास रोड,
फिरोजाबाद-283203
ई-मेल: dryayavar@gmail-com

हम बैठे आनन्द से, परंपरा के धाम।
कोई आकर लिख गया, वहाँ रूढ़ि का नाम।।

किसने कहा विलोम है, परम्परा-विज्ञान।
एक सत्य का धर्म है, अपर सत्य-संधान।।

परम्परा संस्कृति विमल, संरक्षित संस्कार।
परम्परा इतिहास का, है जीवित भंडार।।

लोक, धर्म, इतिहास नय, भाषा, भूषा , वेश।
परम्परा से ही सदा, रहा सुरक्षित देश।।

मृत्यु संग अमरत्व है, भोग त्याग के साथ।
दुख-सुख मायाभास हैं, परम्परा के हाथ।।

सरिता-सी गतिमय सतत, रहती नित्य नवीन।
शुभ परम्परा मनुज को, रखती सदा अदीन ।।

सुख की वर्षा हो उठी, उसके चारो ओर।
परम्परा को सौंप दी, जिसने जीवन-डोर।।

भीषण जीवन-युद्ध में, रहे सदा बलवान।
परम्परा करती रही, हमको कवच प्रदान।।

तपता सूरज शीश पर, जलते नंगे पाँव।
परम्परा ने सर्वदा, दी है शीतल छाँव ।।

है अभाव महँगी बिके, अधरों की मुस्कान।
चलो शहर में खोल लें, चलकर एक दुकान।।



-डॉ. राधेश्याम शुक्ल
392,एमजीए, हिसार -125001
(हरियाणा)
मो : 9466640106

हम 'पंछी' 'परदेस' के, हम पानी की जात।
आज यहाँ, कल को कहाँ, क्या पूछो हो बात॥

नहीं हुई परदेस की, पूरी कभी मियाद।
'अब घर चल' कहती रही, मुझे 'वतन' की याद॥

गिरी 'गिरस्ती' पर हुआ, दिन-दिन बोझ सवार।
पेट-पीठ ढोते फिरें, कर्जा, सूद, उधार॥

बस्ती-बस्ती जिन्दगी, रही सुकून तलाश।
'कंचन-मृग' ने हर लिया, इसका होश-हवास॥

घर-घर सीताएं तपें, गलें पसीज-पसीज।
'मेंहदी' के क्या मायने, क्या सावन क्या तीज॥

'कौशल्या' खत जोहतीं, 'दशरथ' देखें बाट।
कंचन-मृग के फेर में, राम बिक रहे हाट॥

साँझ ढले दिन दे गया, ममता वाली पीर।
'संझवाती' में झिलमिली, अम्मा की तस्वीर॥

आठों याम मनौतियाँ, साँस-साँस आशीष।
अम्मा मन के आंगने, जैसे फूल शिरीष॥

अम्मा रोटी-सी सिंकीं, पकीं चावलों सँग।
गलीं दाल-सी, इस तरह, जीने का था ढंग॥

यह पीड़ा परदेस की, गाथा बनी अनाम।
'जंगल-जंगल' घूमते, कौशल्या के राम॥



-राहुल शिवाय
सरस्वती निवास,चट्टी रोड, रतनपुर
बेगूसराय-851101 (बिहार)
ई-मेल : rahulshivay@gmail-com

तुमने सुंदरता चुनी, मैंने उसका प्रेम।
हम दोनों के पास में, अपना-अपना फ्रेम॥

मैं ले लूँ तेरा 'हरा', तू ले मेरा 'लाल'।
एक रंग दोनों बनें, फिर क्या बचा सवाल॥

मैं खुद-सा बन कर रहा, बदल न पाया रंग।
इस कारण मैं हो गया, भूला हुआ प्रसंग॥

झुक पाया मैं कब भला, रहा पहुँच से दूर।
अहंकारियों के लिए, मैं खट्टा अंगूर॥

चाहे तुम मेरा कहो, या अपनों का स्वार्थ।
मैं अंदर से बुद्ध हूँ, ऊपर से सिद्धार्थ॥

जनजीवन की पीर ही, साहित्यिक पहचान।
वरना सब ही खोलकर, बैठे हुए दुकान॥

सबके मुखड़े पर मिला, मुझको एक नकाब।
भला किसे अच्छा कहूँ, किसको कहूँ खराब॥

बेकारी, दंगे, हवस , भूख, गरीबी, पीर।
एक युवक ने देश की, खींची ये तस्वीर॥

हत्यारे का इस तरह, किया गया सत्कार।
राजघाट, हे राम! कह, मरा हजारों बार॥

तुलसी, कोठी, चिट्ठियाँ, गौरैया, सन्दूक।
कल तक थे जितने मुखर, अब उतने ही मूक॥



-लायकराम 'मानव'
साक्षरता निकेतन, पोस्ट-मानस नगर,
कानपुर रोड, लखनऊ-226023
ई-मेल : contactlrmanav@gmail-com

कन्याओं का शत्रु है, निष्ठुर,तुच्छ दहेज।
भले लोग इस व्याधि से, करें सख्त परहेज॥

मायावी यह राक्षस, बदल-बदल कर भेष।
नव बधुओं के हृदय को, पहुँचाता है ठेस॥

कैसे हैं माँ-बाप जो, बेच रहे निज पूत।
बहिष्कार इनका करें, मानें इन्हें अछूत ॥

है कलंक इस देश पर, सामाजिक अभिशाप।
लेन-देन करते नहीं, समझदार माँ-बाप॥

भीख अकड़कर माँगते, बेशर्मी के साथ।
यों दहेज के नाम पर, फैलाते हैं हाथ॥

लालच में अंधे हुए, नहीं रहे इंसान।
इस दहेज की हवस में, बन बैठे हैवान॥

बेटी लक्ष्मी रूप है, घर की शोभा-शान।
वस्तु समझ क्यों कर रहे, उसका कन्यादान॥

शुभ अवसर पर मत कभी, लें दहेज का नाम।
सामूहिक शादी करें, खर्चे बचें तमाम॥

बहू नहीं, गृहलक्ष्मी, आदर की हकदार।
बेटे-सा ही दीजिये, अपना प्यार-दुलार॥

एक-दूसरे की मदद, सुख-दुख में सहभाग।
रिश्तों की गरिमा यही, करें परस्पर त्याग॥



-डॉ. विनय मिश्र
बी-161, हसन खाँ मेवाती नगर,
अलवर-301001 (राजस्थान)
ई-मेल : mishravinay18@gmail.com

जाते-जाते हाथ से, बनी इस तरह बात।
इक दिन अपने अंत से, मैंने की शुरुआत॥

क्या होना है जिन्दगी, इतना भी शालीन।
समझ न आए वक्त पर, मोटा और महीन॥

जहाँ तृप्ति की छाँह थी, वहाँ झुलसता दौर।
तब की बातें और थीं, अब की बातें और॥

इक अनजानी प्यास को, पीकर हैं बेचैन।
इस पानी में आग है, ये कहते हैं नैन॥

हर लम्हा है खौफ से, सहमा इक खरगोश।
शोकेसों में जिन्दगी, पत्थर-सी खामोश॥

आँसू लेकर आँख में, दिल में लेकर प्रीत।
वर्षों तक बुनता रहा, एक जुलाहा गीत॥

तपते रेगिस्तान में, एक अकेला पेड़।
बरसों तक लेता रहा, सूरज से मुठभेड़॥

कुछ ऐसे है ध्यान में, खुशियों का सामान।
जैसे रहता था कभी, पनडब्बे में पान॥

तू ऐसे चलता रहा, मुझमें अपने आप।
जैसे अपने मौन में, राह चले चुपचाप॥

लिखती जाती डायरी, बढ़ती जाती चाह।
बैठी एक शकुंतला, किसकी देखे राह॥



-विजय बागरी 'विजय'
कछारगाँव(बड़ा),
कटनी-483334 (म.प्र.)
मो. : 9669251319

कथ्य, शिल्प, अभिव्यंजना, लक्ष्यमान-संधान।
तेवर दोहा-दृष्टि का, फिर से हुआ जवान॥

पनघट की कविता मरी, मरे नदी के छंद।
कहाँ तिरोहित हो गया, झरनों का आनंद॥

होठों पर संवेदना, दिल में तीर-कमान।
ऐसे शिष्टाचार का, भला करे भगवान॥

चापलूसियाँ आजकल, देखो मालामाल।
निष्ठाओं की चल रही, सघन जाँच-पड़ताल॥

राग-द्वेष से पाटकर, धरती को इंसान।
अन्तरिक्ष को नापने, निकल पड़ा नादान॥

स्वार्थ उड़ानें भर रहा, गगन चूमता लोभ।
नैतिकता की मृत्यु पर, नहीं किसी को क्षोभ॥

शुचिता मरणासन्न है, आहत जन-विश्वास।
सम्बन्धों के आपसी, बदले संधि-समास॥

कविताओं के भाग्य में, तिरस्कार-अपमान।
लूट रहे हैं चुट्कुले, सारस्वत-सम्मान॥

राजा के दरबार का, निर्णय कर स्वीकार।
जिसकी लाठी भैंस पर, उसका ही अधिकार॥

गठबंधन मारीच से, करते विश्वामित्र।
सत्ता-कुर्सी के 'विजय', रिश्ते बड़े विचित्र॥



-विवेक 'राज'
ग्राम-नगला हुसेन, पो. कूड़ी,
जन. हरदोई -241124 (उ.प्र.)
मो. 9415344051

पत्ते, टहनी, फूल, फल, सब हो गए उदास।
दिन-भर जब लौटा नहीं, माली इनके पास॥

ईंटें, पत्थर, गिट्टकें, चाकू, छुरी, कटार।
इनसे भी गहरी बहुत, है शब्दों की मार॥

कुंठा, कटुता, कुटिलता, घृणा, द्वंद्व, अन्याय।
इस जीवन को लग गई, जाने किसकी हाय॥

बातें दिन की भी सुनी, सुना रात का मौन।
असमंजस फिर भी रहा, अधिक बोलता कौन॥

अपना-अपना ले गए, भरकर सभी अनाज।
फिर से बूढ़े खेत को, मिला नहीं कुछ आज॥

फफक-फफक रोता रहा, यहाँ वहाँ अहसास।
जब रिश्तों ने कत्ल में, मार दिया विश्वास॥

सुन-सुनकर जब थक गया, सर्पों की फुफकार।
आगबबूला तब हुआ, मर्यादित व्यवहार॥

धधक-धधक कर जल उठी, कोलाहल की आग।
सूनेपन की देखकर, अनुचित भागमभाग॥

ऑफिस की ये सीढ़ियाँ, देतीं हैं संदेश।
झोपड़ियों का है यहाँ, वर्जित अभी प्रवेश॥

पत्र, चित्र, आवागमन, फिर हैं सब बेकार।
एक बार जब बन गई, दिल में अगर दरार॥



-वीरेन्द्र आस्तिक
एल-60,गंगाविहार,
कानपुर-208010
ई-मेल : astikvirendra@gmail-com

दीवाने दोनों खड़े, आशिक और रकीब।
सत्ता की मुश्किल बढ़ी, असली कौन हबीब॥

जंगल कहता शेर से, तुम गीदड़ की जात।
पाँच साल से कर रहे, बस चुनाव की बात॥

तुमने पूछा किस तरह, काट रहे हम वक्त।
लिखते-गाते गीत को, रहते हैं हम व्यस्त॥

दुनिया औचक देखती , टूट गई है भ्रांति।
संविधान में शक्ति वह, जो कर सकती क्रान्ति॥

सत्ता, साहू, सेठ कब, सुनते हैं फरियाद।
बंद दिहाड़ी,बंद मिल, कौन करे अब याद॥

मेहनत अपना धर्म है, हाथ-पाँव औजार।
बंदी में सब पर लगी, जंग, हुए बेकार॥

जिन्दा रहने के हुए, सारे फेल जुगाड़॥
लौट चलें अब गाँव को, आया माह अषाढ़॥

आज अदालत ने कहा, अब तक डटा किसान।
जल्दी मसला हल करो,सुनो खोलकर कान॥

बूढ़े, बच्चे ओढ़कर, सच्चाई का शाल।
धरने पर अब तक डटे, सर्दी हुई निहाल॥

अब तक अपनी बात पर, अड़े हुए ये लोग।
नहीं समर्थन मिल रहा, तो छोड़ो हठयोग॥



-डॉ. शिवओम 'अंबर'
4/10, ननुहाई,
फर्रुखाबाद-209625 (उ.प्र.)
ई-मेल.: shiv-om-ambar@gmail-com

प्रश्नों को हैं शूलियाँ, मूल्यों को वनवास।
प्रतिभाओं के भाग्य में, है निर्जल उपवास॥

अंतस संवेदनरहित, दृष्टि कंटकाकीर्ण।
विस्तृत भवनों में मिले, व्यक्ति बड़े संकीर्ण॥

युद्धार्पित है देह ये, कृष्णार्पित है चित्त।
नाटक निर्णायक वही, हम हैं महज निमित्त॥

करुण कभी है तो कभी, व्यर्थ सभी पर क्रुद्ध।
मन ही अंगुलिमाल है, मन ही गौतमबुद्ध॥

गहन अमावस में रहा, बनकर एक चिराग।
सौ पैबंदों से भरा, वो दामन बेदाग॥

प्यास, प्रतीक्षा, प्रार्थना, प्रीति, प्रतीति, प्रणाम।
अंतरपथ में पंथ को, मिले पड़ाव तमाम॥

नित्य मिली अवमानना, हुआ कलेजा चाक।
निर्धनताओं ने जिया, प्रतिपल कुंभीपाक॥

कवि वन-वन भटकाव का, इक करुणाद्र निबंध।
कविता विश्वविमोहिनी, कस्तूरी की गंध॥

हो बेसुध जब गा उठा, मीरा का उन्माद।
आखर-आखर में बंधा, खुद ही अनहद नाद॥

शौर्य-विनय-प्रज्ञा-प्रणय-काव्य-कला-विज्ञान।
सात स्वरों की सम्मिलित, संज्ञा हिंदुस्तान ॥



-शिवकुमार पराग
एस ए 5/140,एस-10,संजय नगर,
कथा, वाराणसी -(उ.प्र.)
मो. 9415694361

पकी फसल को देखकर, सोचे बैठ किसान।
कब तक साहूकार की, मुट्ठी में खलिहान॥

महंगाई बढ़ती गई, गिरे फसल के भाव।
घाटे में खेती गई, पड़ी भंवर में नाव॥

खेत विदेशी हाथ में, जाने को मजबूर।
अब अपने ही खेत पर, बनें किसान मजूर॥

मेहनत,लागत,समय का, है नगण्य परिणाम।
कब किसान तय करेगा, खुद अनाज के दाम॥

कृषक आत्महत्या करें, नहीं किसी को फिक्र।
घड़ियाली आँसू बहें, यदा-कदा हो जिक्र॥

मौके पर से लौटकर, क्यों उदास हे तात!
सरकारी-विज्ञप्ति में, खाद-बीज इफरात॥

कार्पोरेट करा रहा, प्रजातन्त्र में खेल।
ध्वनिमत के हाथों कसी, कृषि पर नई नकेल॥

रंगमंच पर देखिये, लोकतन्त्र का जश्न।
चला गया नेपथ्य में, महंगाई का प्रश्न॥

नाव हवा में चल रही, पानी में पतवार।
जनता बैठी रेत पर, गद्दी पर बटमार ॥

महाशक्ति भारत बनें, मरें किसान-मजूर।
यह संकल्प महान है, कायम रहें हुजूर॥



-शिवशरण बंधु हथगामी
हथगाम, फतेहपुर (उ.प्र.)
मो. : 9415166683

किस दर्जा गुमराह है, किस दर्जा मजबूर।
दिल्ली ही जाने नहीं, दिल्ली का दस्तूर॥

दंगों में जलते रहे, लोगों के घरबार।
बहसों में उलझा रहा, दिल्ली का दरबार॥

गांवों में मरता रहा, निर्धन निबल समाज।
दिल्ली में सड़ता रहा, लेकिन ढेर अनाज॥

आजादी के क्या हुए,सपने चकनाचूर।
दिल्ली भी होती गई, दिल वालों से दूर॥

कीचड़ करे सुगंध या, बदबू करे गुलाब।
राजा चाहे जिस तरह, होगा वही जनाब॥

चन्दा माँगे चाँदनी, सूरज माँगे ताप।
मजदूरी मजदूर की, तुम भी दे दो बाप॥

कैसा अत्याचार है, प्रजातन्त्र के साथ।
राजा सोये महल में, जनता को फुटपाथ॥

ना कोई तलवार थी, ना कोई बंदूक।
रघुवर ने किस चीज से, मारा था शंबूक॥

लूट डकैती अपहरण, हत्या के अभियोग।
संसद तेरी गोद में, कैसे-कैसे लोग॥

लूट लूट हम हो रहे, रोज रोज धनवान।
देशभक्त तो असल में, हैं मजदूर-किसान॥



-शिवानंद सिंह 'सहयोगी'
'शिवाभा' ए-233,
गंगानगर, मेरठ-250001
ई-मेल: shivanandsahayogi@gmail-com

'काशी' 'शाश्वत नगर' है, इसकी 'अद्‍भुत' राय।
सुबह-शाम की बैठकी, फुटपाथों की चाय॥

भारतेन्दु का यह शहर, 'जयशंकर' का 'कोट'।
काशी हिन्दू धर्म की, पूजा का 'अखरोट'॥

परिभाषा से यह परे, 'नमस्कार' 'परनाम'।
काशी का उपनाम है, 'जीने का ही नाम'॥

काशी 'छत' 'आकाश' है, काशी है आदित्य ।
काशी 'भाँड़' 'बिदेशिया', काशी है साहित्य ॥

काशी है 'हरितालिका', और 'जलेबी-गर्म'।
'काजू की बर्फी', 'दही', काशी का है मर्म॥

'लिट्टी–चोखा' 'भूख' है, और 'नींद की खाट'।
काशी 'गरम कचौड़ियाँ', और 'चटपटी चाट'॥

काशी 'मैदागिन' 'वरुण, 'शिवपुरवा की धूप'।
काशी है 'फुलवारिया', 'सिगरा' 'लंका' रूप॥

काशी 'दशाश्वमेघ' है, काशी 'स्वर्ग-कपाट'।
मगहर बसे कबीर को, काशी लगी उचाट॥

भीड़भाड़ का यह शहर, काशी संज्ञावान।
आधी सड़क 'दुकान' है, आधी है 'भगवान'॥

काशी गलियों का शहर , काशी 'पीपल-नीम'।
काशी का मौसम दवा, काशी एक हकीम ॥



-डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर'
24/18, राधा नगर,
फतेहपुर-212601 (उ.प्र.)
ई-मेल: doctor_shailesh@rediffmail-com

ऊँचे स्वप्न उड़ान के, टूटे पंख समेत।
एक झपट्टा बाज का, चिड़िया हुई अचेत॥

बुना भूख ने जाल यूँ, समझ न पाया चाल।
सत्ता के पट बंद थे, बुधिया मरा अकाल॥

उनको घर में चाहिए, डॉगी या फिर कैट।
बूढ़ी माँ कैसे रहे, छोटा-सा है फ्लैट॥

देह बिकाऊ ब्राण्ड है, देह गणित का जोड़।
विज्ञापन के दौर में, मची हुई है होड़।।

तब पासे का खेल था, अब गोली-बंदूक।
मदद माँगती द्रौपदी, सभा आज भी मूक॥

तन उनका लंदन हुआ, मन पेरिस की शाम।
इधर पड़ी माँ खाट पर, उधर छलकते जाम॥

राजा अपने काम का, करता रहा बखान।
सच से कोसों दूर थे, उसके दोनों कान॥

तुम प्रपंच, तुम झूठ हो, मैं जीवित विश्वास।
तुम सत्ता के बुलबुले, मैं शोषित की आस॥

कलम भूप के सामने, करती जब-जब योग।
शील्ड, शाल, ईनाम का, बन जाता संयोग॥

काँटे खुद को जब चुभे, बदल गई तब चाल।
मरी हुई संवेदना, करने लगी सवाल॥



-शुभम श्रीवास्तव ओम
मालवीय नगर,मकरी खोह,
जिला-मीरजापुर-231001 (उ.प्र.)
ई-मेल : shubham-omji@gmail-com

नई हवाओं ने किया, ऐसा मनबहलाव।
कुहरा ओढ़े रात-भर, रोता रहा अलाव॥

वर्तमान को लग गया, जाने कैसा रोग।
मौलिक हैं परछाइयाँ, आभासी हैं लोग॥

इस पीढ़ी से सोचिए, क्या सोचे मासूम।
पुस्तक को फुटपाथ है, जूते को शोरूम॥

जीत उजाले की हुई, हार गया फिर स्याह।
बिटिया ने घर में रचा, फिर गुड़िया का ब्याह॥

घर में रहने आ गए, नए-नए मेहमान।
चिड़ियों को अच्छा लगा, मेरा रोशनदान॥

जीवन जीने का यही, सबसे अच्छा ढंग।
कुछ होठों को गीत दें, कुछ फूलों को रंग॥

अतिविचार के दौर में, फिर विचार का लोप।
तर्क महज षड्यंत्र है, तथ्य महज आरोप॥

बंदी-मन की रात-दिन, मौसम से मुठभेड़।
बादल लौटे, देर तक, रहे बरसते पेड़॥

दोनों बोले जोर से, दोनों ही चुपचाप।
दोनों पर हावी हुआ, अपना-अपना आप॥

कैसी समकालीनता, कैसे समकालीन।
मानव होने की तरफ, बढ़ने लगी मशीन॥



-शैलेंद्र शर्मा
248/12,शास्त्रीनगर,
कानपुर -208005
मो : 6387100753

कुछ हरियाली, फूल कुछ, काँटों का विस्तार।
कैक्टस का है बाग या, रिश्तों का संसार॥

दावा करते नेह का, किन्तु चुभोते डंक।
रिश्तों ने छोड़ा किसे, क्या राजा क्या रंक॥

रिश्तों के संसार का, यह कैसा दस्तूर।
ज्यों-ज्यों घटती दूरियाँ, दिल से होते दूर॥

अपनों ने ही है दिया, कुछ ऐसा अपनत्व ।
मन में खारे सिंधु का, बढ़ता गया घनत्व ॥

जो रिश्ता जितना अधिक, अपने रहा करीब।
जड़ी उसी ने पीठ पर, उतनी बड़ी सलीब॥

हैं गुलाब काँटों घिरे, दुश्मन चारों ओर।
रिश्तों में हैं भेड़िये, नातों में हैं चोर॥

अपनों से हारे सदा, और बने आखेट।
कहाँ कुल्हाड़ी काटती, अगर न होता बेंट॥

एक किए जिसके लिए, घाटी और पहाड़।
वही नीड़ लगता कभी, खुद को जेल तिहाड़॥

पोर-पोर बदबू भरी, ऊपर महके इत्र।
सम्बन्धों में आजकल, दिखते यही चरित्र॥

जिन रिश्तों से जगत में, फैले धूप-सुगंध।
उन रिश्तों से कीजिये,पल-प्रतिपल अनुबंध॥



-संदीप मिश्रा 'सरस'
मोहल्ला-शंकरगंज, पो. बिसवाँ
जन. सीतापुर-261201 (उ.प्र.)
ई-मेल: sandeep-mishra-saras@gmail-com

दरवाजे की ओट से, झाँक रहे दो नैन।
बेटा घर लौटा नहीं, अम्मा हैं बेचैन॥

थाली में रोटी बची, अम्मा हुईं उदास।
बेटा भूखा उठ गया, उसको है अहसास॥

आँगन की दीवार ने, घर को किया मकान।
माँ ने चुप्पी साध ली, बापू है हैरान॥

घर–आँगन में खींच दी, बेटों ने दीवार।
माँ फिर भी है देखती, दीवारों के पार॥

घर आँगन हाता बँटा, बँटे खेत-खलिहान।
रोजगार की चाह में, घर-घर खुली दुकान॥

बेटा लौटा खेत से, हल से सूरज नाप।
माँ ने आँचल ढक दिया, मिटा जेठ का ताप।

घर-आँगन सब बाँट लो, बांटो सब जागीर।
हरगिज बाँटूँगा नहीं, अम्मा की तस्वीर॥

गिरवी रख दूँ सत्य को, कैसे रह लूँ मौन।
युग पूछेगा प्रश्न तो, उत्तर देगा कौन॥

अँधियारे ने दीप का, पंजा दिया मरोड़।
कहा निशा से भोर तक, मेरी तुझसे होड़॥

संघर्षों की कोख से, उपजा है प्रतिसाद।
अक्षर-अक्षर में पगा, रचना का संवाद॥



-संध्या सिंह
डी-1225, इन्दिरा नगर,
लखनऊ-226016
ई-मेल: sandhya-20july@gmail-com

क्रूर-समय से कर्ज में, ली पल-भर मुस्कान।
जीवन-भर लेता रहा, आँसू में भुगतान॥

रिश्ते विज्ञापन हुए, नकली सब संवाद।
बढ़िया रैपर में दिखें, ज्यों घटिया उत्पाद॥

नारी वसुधा का रहा, सदा एक व्यवहार।
ऊपर परतें बर्फ की, भीतर हैं अंगार॥

नग्न धरा को हो रहा, चीरहरण का भान।
चुन्नट-चुन्नट खुल रहा, हरियाला परिधान॥

झोंकों से आँधी बनी, संयम तोड़ समीर॥
पत्ता-पत्ता हो गई, उपवन की जागीर॥

हिन्दू-मुस्लिम गोटियाँ, सिंहासन का खेल।
लोकतन्त्र के बाग में, नेता विष की बेल॥

तिकड़म का बाजार है, नहीं हुनर का ठौर।
सिद्ध लोग कुछ और हैं, हैं प्रसिद्ध कुछ और॥

भँवर-भँवर अपमान की, गुस्से का सैलाब।
नदी हुई प्रतिरोध से, बूँद-बूँद तेजाब॥

भीतर इक सैलाब है, जल ही जल चहुं ओर।
चेहरे पर छुपती फिरे, बूँद नयन की कोर॥

पिंजरे में सांसें घुटें, चिड़िया करे गुहार।
मुझे गगन की शर्त पर, हर जोखिम स्वीकार॥



-सत्यशील राम त्रिपाठी
ग्राम-रुद्रपुर, पोस्ट-खजनी,
जिला-गोरखपुर-273212
मो. 8052253857

करना चाहे आदमी, इच्छाओं की सैर।
चादर घटती जा रही, बढ़ते जाते पैर॥

चढ़ संसद के मंच पर, गालिब पढ़ते शेर।
तीतर ताली पीटते, गाली बकें बटेर॥

ब्याह-विदाई में गया, घर का सारा खेत।
लेकिन नदिया हो गई, कुछ वर्षों में रेत॥

नदी, नाव, नरकट, नहर, नीम, नीड़, नलकूप।
जान बचा भागे सभी, देख गाँव का रूप॥

बादल जी दे दीजिये, कुछ वर्षों तक साथ।
मुझको करने हैं अभी, पीले दो-दो हाथ॥

मुझे न कुछ भी चाहिए, मैं मरुथल का पेड़।
बस मरते दम तक करूँ, सूरज से मुठभेड़॥

हाथों में जब से बँधी, हिम्मत की ताबीज।
तब से नित बोने लगा, मैं ऊसर में बीज॥

शुद्ध ब्याज में ले गया, मुखिया सारा माल।
हलकू के हिस्से बचा, भूसा और पुआल॥

वादों की 'मेट्रो' चली, घपलों का 'राफेल'।
वोट नोट में रुक गईं, रोजगार की रेल॥

झोपड़ियों को मिल रहा, माचिस-केरोसीन।
लेकिन महलों के लिए, मखमल औ' कालीन॥



-डॉ. सुरेश अवस्थी
(राष्ट्रपति सम्मान प्राप्त शिक्षाविद एवं वरिष्ठ पत्रकार)
सम्पर्क: 117 एल/233, नवीन नगर, कानपुर-208025
ई-मेल: drsureshawasthi@gmail-com

रंग सियासत के अजब, अजब निराले बोल।
हत्या, शोषण, आपदा, लेती वोट टटोल।।

उत्सव या अर्थीगमन, हर पल इक ही राग।
कांव-कांव करते मिले, पागल, कुत्ते, काग।।

ये भी उसका खास है, वो भी उसका खास।
सबसे काम निकाल ले, जादू उसके पास।।

जीवन जैसे इक नदी, जनम-मरण दो छोर।
लहर-लहर काटी उमर, शाम, रात औ' भोर।।

देह-पेड़ के पात फल, नींद, पिपासा, भूख।
जल यदि मिले न प्यार का, जाय अभागा सूख।।

परबत सन्यासी हुये, बने तपस्वी पेड़।
सर्दी सिर पर नाचती, ऊन मांगती भेड़।।

कुहरा तानाशाह है, घूम रहा स्वच्छन्द।
सूरज चुप बैठा कहीं, किए खिड़कियाँ बंद।।

धूप गुनगुनी आ गयी, सरपट भागी शीत।
गगन, धरा, पौधे सभी, बने धूप के मीत।।

चादर से बाहर हुए , नई सदी के पाँव।
भाई-भाई में चले, शकुनी वाले दाँव।।

धूप सयानी हो गई, बौनी होती छाँव।
रिंग रोड पर सोचते, कहाँ खो गया गाँव।।



-सुवेश यादव
ग्राम-शीशूपुर, पो. करबिगवाँ
जिला-कानपुर नगर
मो : 6393009448

रहा भरोसे वक्त के, होता रहा निराश।
कैंची उसके पास है, कतरन अपने पास॥

बेशक हम नादान हैं, या थोड़ा मजबूर।
समय संग बदले नहीं, अपना यही कसूर॥

अपनी-अपनी शान है, अपने-अपने ठाठ।
शहंशाह का तख्त हो, या फकीर की खाट॥

खोल तीसरी आँख अब, नंगा कर दे साँच।
अरे परिंदे! जाग तू, आसमान को बाँच ॥

पूजा महंगी हो गई, सस्ता है भगवान।
देवालय के सामने, जबसे खुली दुकान॥

जादूगर के हाथ में, एक चमकता काँच।
तू भी हो जा बावरा, देख तमाशा नाच॥

चलो उगाएँ रोटियाँ, श्रम करना बेकार।
बदल गया रोबोट में, राजा करे विचार॥

जाल-सियासी फेंक कर, बैठे हैं सैयाद ।
चिड़िया! दाने के लिए, मत करना फरियाद॥

कंगूरों पर है लिखा, चारण जी का नाम।
छुपा नींव की ईंट-सा, जनकवि है गुमनाम॥

मेरे दर्जी सिल जरा, ऐसी नई कमीज।
पहनूँ तो दुनिया कहे, आई मुझे तमीज॥



-हरि मोहन बाजपेयी 'माधव'
सी-33, शिवानी विहार,
कल्याणपुर, लखनऊ-22622
मो. : 9415410407

जीवन-भर भागा किया, तनिक न हुआ निढाल।
मन की है किससे लगन, मंद न होती चाल॥

सच्चे दिल में भर लिए, कंकड़-पत्थर-ईंट।
नहीं मानता मूर्ख मन, बच्चों जैसा ढीठ॥

सुख-दुख सोते-जागते, रहते हरदम साथ।
इक चादर ओढ़े हुए, दूजा करता बात॥

कंक्रीट के उग गए, जंगल चारो ओर।
मन के वन में रम रहे, सारे आदमखोर॥

मन की खुशबू बाँट कर, तन को दिया बिखेर।
फिर आऊँगा शाख पर, कह कर गया कनेर॥

सूरज, चंदा, रागिनी, रजनी, सुधा, प्रभात।
डूब गए आकर शहर, कुछ सपनों के साथ॥

सपने लेकर गाँव से, आया नवल किशोर।
पहुँचा ही था शहर में, लूट ले गए चोर॥

सपनों की ही चढ़ गए, सारे सपने भेंट।
सपनों ने ही कर लिया, सपनों का आखेट॥

हँसें हंस को देख कर, सारे काग-उलूक।
मति का मारा व्यर्थ में, सच बोले दो टूक॥

जब बेटे ने पूछ ली, टेढ़े मुँह औकात।
नींद न आई रात-भर, रोया सारी रात॥



-हरीलाल मिलन
दुर्गावती सदन, प्लॉट न.16,
हनुमंत नगर, नौबस्ता कानपुर-208021
मो. 9935299939

कैसे-कैसे घाव है, कैसी-कैसी पीर।
रचना में दिखती सदा, भीतर की तस्वीर॥

छंदों के ब्रहमाण्ड में, दोहे का संसार।
बूंद सदृश आकार है. सिन्धु सदृश विस्तार॥

कटे पंख से उड़ रहा, शुक होकर बेहोश।
पिंजरे में भी शेष है, आजादी का जोश॥

कागज की नौका मिली, दफ्ती की पतवार।
जाना है तूफान में, व्यथा-सिन्धु के पार

पद के नीचे ही रहे, ऊँचाई के माथ।
तिनके से कमजोर हैं, ये लोहे के हाथ॥

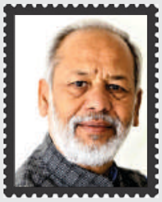
वादी-प्रतिवादी मरे, खत्म हुआ अध्याय।
तारीखों ने कर दिया, आखिर खुद ही न्याय॥

लक्ष्य-भेद में श्रेष्ठ था, एकलव्य का ज्ञान।
ईर्ष्या में गुरु ने मगर, लिया अँगूठा-दान॥

एक अकिंचन फूल को, कैसे मिली सुगन्ध।
शंकाएँ कहने लगी, है कोई अनुबन्ध॥

क्या कह दें क्या बोल दें, नहीं ठिकाना-ठौर।
तब के निन्दक और थे, अब के निन्दक और॥

कहा तथागत ने कभी, 'दुखमय ये संसार'।
किन्तु इसी संसार से, प्राणी पाते प्यार॥



-हरेराम समीप
395, सेक्टर 8,
फरीदाबाद-121006
ई-मेल : sameep395@gmail-com

जीवन के संदर्भ में, क्या है तेरा पक्ष।
पूछ रहा मुझसे यही, नए समय का यक्ष॥

मन-भर भोजन भी नहीं, तन-भर मिली न नींद।
थाली-भर अवसाद है, चम्मच-भर उम्मीद॥

भूखे का भोजन बनूँ, हो तब पूरन काज।
क्या-क्या सोचे खेत से, आता हुआ अनाज॥

आग लगी साहित्य में, बढ़ती जाये आँच।
जलते शब्दों को अगर, बाँच सके तो बाँच॥

जो है मेरे सामने, यही सत्य संसार।
मैं क्यों सोचूँ बेवजह, जीवन के उस पार॥

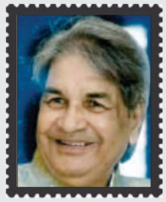
चला हमारे देश में, निजीकरण का खेल।
सरकारी संपत्ति की, लगी हुई है सेल॥

श्रम का प्रतिफल यह मिला, उस किसान को आज।
लेकर गए बिचौलिये, मंडी बीच अनाज॥

तेरे इस संघर्ष में, तब आएगा रंग।
कर देगा हुक्काम की, जब तू नींदें भंग॥

उदासीन इस वक्त का, क्या करिए उल्लेख।
खून खौलता ही नहीं, यहाँ पाप को देख॥

करुण कथा इंसान की, रचे सदा आख्यान।
आँसू की इक बूंद में, डूबे वेद-पुराण॥



-हस्तीमल 'हस्ती'
ज्वेलरी इम्पोरियम, पोस्ट ऑफिस के सामने,
नेहरू रोड, सांताक्रूज पूर्व, मुंबई-400055
ई-मेल : hastiji53@gmail-com

फीकी है हर चूँदड़ी, फीका हर बंधेज।
जो रँगता है रूह को, वो असली रँगरेज॥

खुशबू जैसी दोस्ती, फूलों जैसा साथ।
जिसको जीवन में मिले, महका वो दिन-रात॥

कुदरत के उपहार को, समझ सके ना लोग।
धन्य हो गया वो जिसे, लगा प्रेम का रोग॥

पूजा, मन्नत, ध्यान, व्रत, तंत्र, मंत्र, ताबीज।
इक बीमारी प्रेम की, पच्चीसों तज्वीज॥

पार उतर जाये भला, किसकी इतनी धाक।
डूबे अंखियन झील में, बड़े-बड़े तैराक॥

सभी देखते रह गए, अनुभव, दौलत, नाम।
रूप ले गया हर दफा, बड़े-बड़े ईनाम॥

न्यारी बगिया प्रीत की, न्यारे इसके फूल।
हो जाते हैं अनुभवी, बिना गए (इ)स्कूल॥

जाने किससे है बनी, प्रेम नाम की डोर।
सह जाती है बावरी, दुनिया-भर का जोर॥

पद, इज्जत, यश, सम्पदा, कला, ज्ञान, संगीत।
इनमें दुर्लभ कुछ नहीं, दुर्लभ साँची प्रीत॥

'हस्ती जी' इस प्रीत की , बड़ी अजब तकदीर।
मन को मिलते पंख औ', पाँवों को जंजीर॥



-त्रिलोक सिंह ठकुरेला
बंगला न.99, रेलवे चिकित्सालय
के सामने आबू रोड-307026,
जिला-सिरोही (राजस्थान)
मो. 9460714267

आमंत्रण देता रहा, सदियों से आकाश।
वही बुलंदी तक गया, काट सका जो पाश॥

रंग रूप सबका अलग, अलग-अलग आकार।
चाक वही, माटी वही, सबका वही कुम्हार॥

मृग-मरीचिका दे सकी, जग को तपती रेत।
जीवन के संदर्भ हैं, फसलों वाले खेत॥

फूल हँसे भौंरे झुके, फैली प्रेम-सुगंध।
मन के कागज पर हुए, प्रीति भरे अनुबंध ॥

चाहे सब अनुकूल हो, चाहे हो प्रतिकूल।
जीवन के हर मोड़ पर, रखना साथ उसूल॥

छाया बाँट कुटुंब को, खुद सह लेती धूप।
नारी है संसार में, ईश्वर का प्रतिरूप॥

ईंट फेंककर दंभ की, तोड़े मन के काँच।
समझ न पाये तुम कभी, नारी-मन का साँच॥

हरे गए हर काल में, मान, अस्मिता, चीर।
नारी सहती ही रही, कदम-कदम पर पीर॥

तन से है वो मानवी, मन से है भगवान।
जीवन-भर मिलता रहे, नारी को सम्मान॥

मिलने की घड़ियाँ सुखद, किसे याद शृंगार।
गिरे खुशी से झूमकर, गजरा, बिंदी, हार॥


GSTIN - 09AVUPG0478R1ZJ
साईं
प्रो. शोभित गुप्ता
M:. 8874288234
8423628890
महाशिवरात्रि व होली की हार्दिक शुभकामना
शिवा इण्टर प्राइजेज
नोट :- हमारे यहाँ सभी स्कूलों की ड्रेस का
कपड़ा उचित मूल्य पर मिलता है।
सुभाष नगर मेन रोड, रूरा


विश्व काला मोतिया (ग्लूकोमा) सप्ताह
07 से 13 मार्च, 2021
राष्ट्रीय दृष्टिविहीनता एवं दृष्टि दोष नियंत्रण कार्यक्रम, उत्तर प्रदेश
सामान्य दृष्टि
काला मोतिया (ग्लूकोमा) से प्रभावित दृष्टि
संकेत और लक्षण
प्रकाश के स्रोत के चारों ओर संगीन घेरे दिखाई पड़ना।
साइड विज़न में धीरे-धीरे कमी होना और दृष्टि क्षेत्र सीमित होना।
चश्मे का नम्बर जल्दी-जल्दी बदलना।
दृष्टि के चोर के रूप में जाना जाने वाला काला मोतिया (ग्लूकोमा), नेत्र की दृष्टि के लिए खतरा पैदा करने वाला रोग है।
यह सामान्यत: 40 वर्ष से अधिक आयु के लोगों, विशेषकर ऐसे लोगों को होता है, जिनके परिवार में काला मोतिया (ग्लूकोमा) का इतिहास रहा होता है।
समस्त सरकारी जिला चिकित्सालयों में काला मोतिया (ग्लूकोमा) का इलाज एवं मोतियाबिन्द का ऑपरेशन नि:शुल्क किया जाता है।
रोकथाम
काला मोतिया (ग्लूकोमा) को रोका नहीं जा सकता, लेकिन यदि इसका शुरू में पता लग जाए और समुचित एवं नियमित इलाज हो तो ग्लूकोमा के कारण होने वाली दृष्टिहीनता से बचा जा सकता है।
समस्त जानकारियों हेतु सम्पर्क करें
104
दो गज की दूरी - मास्क अब भी है जरूरी
WE-WIN


AVAA
CONTINENTAL
महाशिवरात्रि व होली
की हार्दिक शुभकामना
प्रो. वीरेन्द्र शुक्ला
मो. 9415045963
आवा कान्टीनेन्टल
रूद्र नगर, आजाद चौराहा शुकलागंज, उन्नाव
शादी-विवाह एवं अन्य मांगलिक कार्यक्रमों हेतु
उपलब्ध रहने व ठहरने की श्रेष्ठ व्यवस्था